बालसखा पुस्तकमाला—पुस्तक पांचवीं

बालनीतिमाला

अर्थात्

चाणक्यनीति, विदुरनीति, शुक्रनीति और कणिक-
नीति आदि नीति के ग्रन्थों का सरल सार

लेखक

[हापुड़ (ज़िला मेरठ) निवासी]

पण्डित रामजीलाल शर्म्मा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

इंडियन पब्लिशिंग हौस, कलकत्ता।

१९०९

दूसरी बार २००० कापी] [मूल्य ॥)

विषयानुक्रम ।

भूमिका और निवेदन ।

'इंडियन प्रेस' की प्रकाशित की हुई 'बालसखा पुस्तकमाला' की अब तक चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पहली 'बालभारत' पहला भाग, दूसरी 'बालभारत, दूसरा भाग, तीसरी 'बालरामायण, और चौथी 'बालमनुस्मृति' ।

हमें यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि सर्व-साधारण हिन्दी-प्रेमी इन पुस्तकों की अच्छी क़दर कर रहे हैं। कितने ही हिन्दी-समाचारपत्रों ने इन पुस्तकों की अच्छी प्रशंसा की है। कितने ही हिन्दी-लेखकों की राय है कि ये पुस्तकें बालकों को ही नहीं बल्कि बड़ों के लिए भी बड़ी उपयोगी हैं।

आज कल हमारे देश में संस्कृत-विद्या का बहुत कम प्रचार है। और हमारे धर्म और नीति आदि विविध विषयों के ग्रन्थ प्रायः संस्कृत भाषा में हैं। संस्कृत न जानने से भारतवासी अपने धर्म-कर्मों को और नीति-शास्त्रों के मर्मों को नहीं जान सकते।

यही सोचकर हमने यह विचार किया है कि संस्कृत के उपयोगी ग्रन्थों का सार सरल हिन्दी में प्रकाशित किया जाय। यह "बालनीतिमाला" इसी विचार का फल है। यह 'बालसखा पुस्तकमाला' की पाँचवीं पुस्तक है।

इस पुस्तक में हमने चाणक्यनीति, विदुरनीति, शुक्रनीति, कणिकनीति और अन्यान्य फुटकर नीति-निबन्धों में से उत्तम उत्तम नीति-वाक्यों को छाँटकर सरल हिन्दी भाषा में लिखा है। इस पुस्तक की भाषा हमने यथा-साध्य ऐसी सरल कर दी है कि जिसे बालक भी अच्छी तरह समझ सकें।

हमें आशा है कि देशहितैषी सज्जन अपनी सन्तान के यह पुस्तक पढ़ाकर उन्हें अपनी प्राचीन नीतियों का बोध करा देंगे।

प्रयाग,
२८।१।०७

रामजीलाल शर्मा

बालनीतिमाला

अथ चाणक्यनीति।

पहला अध्याय।

निर्बुद्धि शिष्य को पढ़ाने से, दुष्ट स्त्री के पालन-पोषण से और दुखियों के साथ कारबार करने से पंडित जन भी दुःख ही पाते हैं।

दुष्ट स्त्री, शठ मित्र, जवाब देनेवाला नौकर और साँपवाला घर, ये चारों मृत्युरूप ही समझने चाहिएँ।

विपत्काल के निवारण करने के लिए धन ज़रूर इकट्ठा करना चाहिए। क्योंकि बड़े बड़े धनाढ्यों को भी आपत्ति आ जाया करती है। यह लक्ष्मी बड़ी चंचल है; इसीलिए यह ख़ूब इकट्ठी होकर भी नष्ट हो जाती है।

जिस देश में अपना आदर-सम्मान न हो, जहाँ जीविका न हो और न जहाँ अपना भाई बन्धु हो और जहाँ किसी प्रकार की विद्या का भी लाभ न हो वहाँ नहीं रहना चाहिए।

जहाँ ये पाँच चीज़ें न हों वहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहिए। वे पाँच ये हैं—१—धनी पुरुष, २—वेद जाननेवाला ब्राह्मण, ३—राजा, ४—नदी और ५—वैद्य।

जीविका, भय, लज्जा, चतुराई, और दान करने की प्रथा. जहाँ ये पाँच न हों वहाँ के लोगों के साथ कभी मित्रता नहीं करनी चाहिए।

भारी काम आ पड़ने पर नौकरों की, दुःख आ पड़ने पर भाईबन्धों की, विपत्काल में मित्र की और सम्पत्ति के नाश हो जाने—निर्धन हो जाने—पर स्त्री की परीक्षा होती है।

सच्चा भाई-बन्द वही है जो दुखी होने पर, किसी व्यसन में फँस जाने पर, दुर्भिक्ष पड़ने पर, शत्रुओं से लड़ाई झगड़ा हो जाने पर, राजदर्बार में और श्मशान पर साथ दे। अर्थात् जो इन स्थानों पर सहायता नहीं करता—साथ नहीं देता—वह बन्धु ही नहीं है।

नदियों का, शस्त्रधारियों का, नख और सींग वाले जीवों का, स्त्रियों का और राजकुल का, कभी विश्वास न करना चाहिए।

दूसरा अध्याय।

जिसका पुत्र वश में रहता है, जिसकी स्त्री इच्छानुसार काम करनेवाली होती है, और जो सन्तोष रखता है, उसके लिए यहीं स्वर्ग है।

पुत्र वही है जो पिता का भक्त हो; पिता वही है जो पुत्रों का पालन करे; मित्र वही है जिस पर विश्वास हो; स्त्री वही है जिससे सुख मिले।

जो सामने तो मीठी मीठी बातें बनावे और पीठ पीछे काम बिगाड़े, ऐसे नाम मात्र के मित्र को उस घड़े के समान समझे जिसमें भीतर तो विष भरा हो और मुँह पर दूध भरा हो। ऐसे मित्र को छोड़ देना चाहिए।

कुमित्र पर तो विश्वास करना चाहिए ही नहीं, पर मित्र पर भी एकदम विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। बात यह कि रुष्ट हो जाने पर वह मित्र भी अपनी सब गुप्त बातों को प्रसिद्ध कर देगा।

मूर्खता से दुःख मिलता है। जवानी भी दुख देने वाली है, परन्तु दूसरे के घर रहना बहुत ही दुखदाई है।

सब पर्वतों पर माणिक्य नहीं होता और न सब हाथियों में मोती मिलते। इसी तरह सब जगह साधु लोग भी नहीं मिलते और सब वनों में चन्दन भी नहीं होता।

बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि वे अपने बाल-बच्चों को सुशीलता का उपदेश करते रहें। क्योंकि नीति के जानने वाले यदि सुशील भी हों तो वे कुल में उत्तम होते हैं।

वे माता श्रौर पिता वैरी हैं जिन्होंने अपने बालकों को नहीं पढ़ाया। वे मूर्ख बालक पण्डित-सभा में ज़रा भी शोभा नहीं पाते। वे ऐसे हैं जैसे हंसों में बगुला।

दुलारने में बड़े दोष हैं श्रौर दण्ड देने में बड़े गुण हैं। इसलिए पुत्र श्रौर शिष्य को सदा ताड़ना ही करनी उचित है। इसी में उनका सुधार है।

कुछ न कुछ रोज़ पढ़ना चाहिए—चाहे एक श्लोक या आधा ही श्लोक पढ़े—पढ़ने श्रौर दान देने आदि अच्छे कामों से कोई दिन ख़ाली न जाने दे। थोड़ा थोड़ा रोज़ करने से भी कुछ दिन में बहुत इकट्ठा हो जाता है।

नदी के किनारे पर लगे हुए वृक्ष, दूसरे के घर जाने वाली स्त्री, श्रौर मन्त्री के बिना राजा, अवश्य नष्ट हो जाते हैं। इनके नाश होने में देर नहीं लगती।

ब्राह्मणों का बल विद्या है श्रौर क्षत्रियों का सेना। वैश्यों का बल धन श्रौर शूद्रों का बल सेवा है।

वेश्या धनहीन पुरुष को, प्रजा शक्तिहीन राजा को, पक्षी फलरहित वृक्ष को, श्रौर अभ्यागत भोजन करके घर को, छोड़ देता है। इसी तरह

ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को छोड़ देते हैं, तथा शिष्य विद्या पाकर गुरु को और जले हुए वन को मृग छोड़ देते हैं।

प्रीति की शोभा बराबर वाले से ही होती है, सेवा राजा की ही शोभा देती है, और व्यवहारों में वाणिज्य और घर में सुन्दर स्त्री की शोभा होती है।

तीसरा अध्याय।

आचार से कुल जाना जाता है और वाणी से देश। आदर से प्रीति जानी जाती है और शरीर से भोजन का ज्ञान होता है।

कन्या को अच्छे कुल में देना चाहिए, पुत्र को विद्या में लगाना चाहिए, शत्रु को दुःख पहुँचाना चाहिए और मित्र को सदा धर्म का उपदेश देना चाहिए।

दुर्जन और साँप इन दोनों में साँप अच्छा है, दुर्जन नहीं। क्योंकि साँप तो एक ही बार काटता है और दुर्जन पद पद पर।

प्रलय काल में समुद्र भी अपनी मर्यादा को छोड़ देता है, पर साधु लोग प्रलय काल में भी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ते।

कोयल की शोभा मीठी वाणी से, स्त्री की पति-सेवा से, कुरूपों की विद्या से और तपस्वियों की क्षमा से शोभा होती है।

उपाय करने पर दरिद्रता नहीं रह सकती, पश्चात्ताप करने वाला पाप नहीं करता, मौन रहने से लड़ाई नहीं होती और जागते हुए किसी का डर नहीं रहता।

सुन्दर फूल और सुगन्ध वाले एक ही वृक्ष से सारा वन सुगन्धित और शोभा-युक्त हो जाता है, जैसे सुपुत्र से कुल।

आग से जलते हुए एकही वृक्ष से सारा वन जलकर भस्म हो जाता है, जैसे कुपुत्र से कुल।

पाँच बरस तक पुत्र को प्यार करे, फिर दस बरस तक ताड़न करे और जब सोलह बरस का हो जाय तब उससे मित्र के समान बर्ताव करना चाहिए।

इतनी जगहों से भाग जाने वाला जीता रह सकता है। उपद्रव उठाने पर, शत्रु के आक्रमण करने पर, घोर दुर्भिक्ष पड़ने पर और दुष्ट के साथ हो जाने पर।

जहाँ मूर्खों की पूजा नहीं होती, जहाँ अन्न का ढेर रहता है और जहाँ स्त्री-पुरुषों में कलह नहीं होता वहाँ सदा लक्ष्मी विराजमान रहती है।

चौथा अध्याय।

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पाँचों चीज़ें प्राणी के लिए गर्भ में ही नियत होती हैं।

जब तक मौत नहीं आती और जब तक शरीर नीरोग है तब तक उत्तम काम कर लेने चाहिएँ। नहीं तो मरने पर कोई क्या करेगा।

एकही गुणी पुत्र अच्छा, निर्गुणी सैकड़ों किसी काम के नहीं। देखो अकेला चन्द्रमा सारा अँधेरा दूर कर देता है, हज़ारों तारों से कुछ भी नहीं हो सकता।

चिरंजीवी मूर्ख पुत्र का तो होते ही मर जाना अच्छा; क्योंकि मरने पर तो एक ही बार दुःख देता है और जीता रहा तो सारी उम्र दुःख देगा।

कुगाँव में रहना, नीच कुल की टहल, बुरा भोजन, लड़ाका स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या; ये छ विना आग ही शरीर को जलाया करते हैं।

स्त्री वही है जो चतुर और पवित्र हो; स्त्री वही है जो पतिव्रता हो; स्त्री वही है जिस पर पति का प्यार हो; और स्त्री वही है जो सदा सच बोलती हो।

समय कैसा है? मित्र कौन है? देश कैसा है? लाभ-व्यय क्या है? मैं किस का हूँ या कैसा हूँ? और मेरी क्या ताक़त है? ये सब बातें मनुष्य को बार बार विचारनी चाहिएँ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का देवता अग्नि है। मुनियों का देवता हृदय में रहता है? मूर्खों का देवता मूर्त्तियों में रहता है, और समदर्शियों—ज्ञानियों—का देवता सब जगह रहता है।

पाँचवाँ अध्याय ।

स्त्रियों का पति ही गुरु है। अभ्यागत—अतिथि या भिक्षुक—सबका ही गुरु है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों का गुरु अग्नि है और चारों वर्णों का ब्राह्मण गुरु है, क्योंकि वह सर्व-विद्या-निधान होता है।

विदेश में विद्या ही मित्र है, घर में स्त्री मित्र है, रोगी का मित्र औषध है और मर जाने पर धर्म मित्र है।

ये पाँच प्रकार के पिता हैं अर्थात् पिता के समान पूजनीय हैं—१—जन्म देने वाला, २—यज्ञोपवीत आदि संस्कार कराने वाला, ३ विद्या देने वाला, ४—अन्न देने वाला, और ५—भय से बचाने वाला।

ये पाँच माताओं के समान हैं—राजा की स्त्री, गुरु की स्त्री, मित्र की स्त्री, सास और अपनी जननी।

छठा अध्याय ।

शास्त्र के सुनने ही से मनुष्य धर्म जानता है और उसी से बुद्धि सुधरती है। उसी से ज्ञान पाता है और उसी से मोक्ष।

राजा, ब्राह्मण और योगी तो भ्रमण करने से पूजित होते हैं और स्त्री भ्रमण करने से नष्ट हो जाती है; बिगड़ जाती है।

जिस के पास धन है वही मित्रों वाला है, उसी के बान्धव होते हैं और वही पुरुष होता है और पण्डित भी वही गिना जाता है।

जो होनहार होता है वैसी ही बुद्धि हो जाती है, वैसा ही उपाय होता है और वैसे ही सहायक मिल जाते हैं।

कुराजा होने से तो न होना ही अच्छा है। मित्र न हो तो न सही, पर कुमित्र किसी काम का नहीं होता। शिष्य न हो तो कुछ परवा नहीं पर निन्दित शिष्य न होना चाहिए। स्त्री न हो तो कुछ हर्ज नहीं पर बुरी स्त्री किसी काम की नहीं होती।

क्योंकि दुष्ट राजा के राज्य में सुख कहाँ? कुमित्र की मित्रता में आनन्द कहाँ? दुष्ट स्त्री से घर में सुख कहाँ? और कुशिष्य के पढ़ाने में यश कहाँ?

सातवाँ अध्याय।

अपने धन का नाश, मन का ताप, स्त्री का चरित, नीच का वचन और अपना अपमान कभी किसी से न कहे।

अन्न और धन के व्यापार में, विद्या पढ़ने में, भोजन में, व्यवहार में जो मनुष्य लज्जा नहीं करता वह सुखी रहता है।

स्त्री में, धन में और भोजन में सन्तोष करना चाहिए और पढ़ने में, जप में और दान में कभी सन्तोष न करे।

भोजन के समय ब्राह्मण, बादलों के गर्जने पर मोर, दूसरों की सम्पत्ति को देख कर सज्जन और पराये दुःख को देखकर दुर्जन प्रसन्न हुआ करते हैं।

यदि कोई सिंह की गुहा में जा निकले तो उसे हाथी के कपोल के मोती मिलते हैं और जो सियार की माँद में चला जाय तो वहाँ बछड़े की पूँछ और गधे के चमड़े के टुकड़ों के सिवा और क्या रक्खा है? कुछ नहीं।

आठवाँ अध्याय ।

अधम जन केवल धन चाहते हैं और मध्यम जन धन और मान, परन्तु उत्तम जन केवल मान चाहा करते हैं। महात्माओं का मान ही धन है।

दीपक अँधेरे को खा जाता है इसी लिए उससे कज्जल पैदा होता है। बात यह कि जो जैसा अन्न खाता है उसकी सन्तान भी वैसी ही होती है।

भोजन न पचने पर जल औषध रूप है। पच जाने पर जल बल बढ़ाता है। भोजन कर चुकने पर, अन्त में, पानी पीना विष के समान है।

बुढ़ापे में स्त्री का मर जाना, पराये हाथ में गया धन और पराधीन भोजन; ये तीन काम बड़े दुःखदायी होते हैं।

विद्याहीन बड़े कुल से किसी को कुछ लाभ नहीं। विद्यावाला नीच कुल भी देवताओं से पूजा जाता है।

कोई कितना ही सुन्दर क्यों न हो, कोई कितना ही जवान क्यों न हो, और कोई कितने ही उच्च कुल

में क्यों न पैदा हुआ हो, यदि वह विद्याहीन है तो किसी काम का नहीं। वह पलाश (ढाक) के निर्गन्ध फूल की तरह व्यर्थ है।

नवाँ अध्याय।

जो आकाश में दूत नहीं जा सकता, वहाँ किसी की बात नहीं पहुँच सकती, और न पहले से किसी ने कह ही रक्खा है और न वहाँ किसी से मेल हो सकता है—ऐसी दशा में आकाशचारी सूर्य्य और चन्द्रमा के ग्रहण को जो स्पष्ट करते हैं वे विद्वान् कैसे नहीं हैं?

विद्यार्थी, सेवक, यात्री, भूखा, भयभीत, भाण्डारी, और द्वारपाल, इन सातों को यदि सोते हों तो जगा देना चाहिए। इनके जगाने में कुछ बुराई नहीं।

साँप, राजा, सिंह, बर्रे, बालक, दूसरे का कुत्ता, और मूर्ख, इनको नहीं जगाना चाहिए। इनके जगाने में हानि होती है।

दसवाँ अध्याय।

धन से हीन हीन नहीं है, पर जो विद्या से हीन है वह सब बातों से हीन है। देखभाल कर पांव रखना चाहिए, वस्त्र से छान कर जल पीना चाहिए, सत्य से शोध कर वचन बोले और मन से सोचकर काम करना चाहिए।

सुख की इच्छा हो तो विद्या को छोड़ दे और जो विद्या चाहता हो तो सुख की परवा न करे। सुखार्थी को विद्या कहां और विद्यार्थी को सुख कहां?

कवि क्या नहीं देखते? स्त्री क्या नहीं कर सकती? शराबी क्या नहीं बकता? और कौवे क्या नहीं खाते?

लोभियों को मांगने वाला, मूर्खों को समझाने वाला, व्यभिचारिणी स्त्रियों को पति और चोरों को चन्द्रमा शत्रु दिखाई देता है।

जिसको घर की बुद्धि नहीं उसको शास्त्र क्या कर सकता है? अंधे को दर्पण से क्या लाभ?

वन में शेर और बड़े बड़े जंगली हाथियों के बीच में रहना, वन के फल खाना और जल पीना, और सैकड़ों छेद वाले वल्कलों का पहनना अच्छा, पर भाई-बन्दों के बीच में धनहीन पुरुष का जीना अच्छा नहीं।

बिना पिसे अन्न से आटे में दशगुण गुण है। आटे से दशगुण दूध में, दूध से घी में बहुत ही अधिक गुण है।

ग्यारहवाँ अध्याय।

देखो हाथी कितना बड़ा जानवर है, पर वह अंकुश के वश में रहता है; तो क्या अंकुश हाथी के बराबर है? कभी नहीं। दीपक जलने पर अँधेरा दूर हो जाता है तो क्या दीपक अंधेरे के बराबर है? बिजली पर्वतों को भी गिरा देती है तो क्या वह पहाड़ों के बराबर है? कभी नहीं। बात यह है कि जिसमें तेज होता है वही बलवान् गिना जाता है। मोटेपन का क्या विश्वास?

घर में मन लगाने वाले को विद्या, मांसाहारी को दया, द्रव्य के लोभी को सचाई, और व्यभिचारी पुरुष को पवित्रता नहीं होती।

यह बात निश्चय है कि दुर्जन को चाहे जितना समझाया जाय पर उसमें सज्जनता नहीं आती। भला कहीं घी दूध से सींचने पर भी नीम में मधुरता आती है? कभी नहीं।

पापी पुरुष तीर्थों में सौ बार भी स्नान करे तो भी शुद्ध नहीं हो सकता। भला कहीं जलाने से मदिरा का पात्र भी शुद्ध होता है? कभी नहीं।

जो जिसके गुणों को नहीं जानता वह उस की सदा निन्दा ही किया करता है। भीलनी हाथी के मस्तक के मोती को छोड़कर सदा घुँघची ही पहना करती है।

काम, क्रोध, लोभ, मिठाई शृङ्गार, खेल, अधिक सोना, और अधिक सेवा; इन आठों दुर्गुणों को विद्यार्थी छोड़ दे।

बारहवाँ अध्याय ।

जो सब आराम का घर मिले, लड़के पण्डित हों, स्त्री मीठा बोलती हो, यथेष्ट धन पास हो, अपनी ही स्त्री में प्रीति हो, सेवक आज्ञाकारी हों, अतिथि और भगवान की सेवा-पूजा होती हो, रोज़ घर में मीठा अन्न और जल मिलता हो और सदा सत्संग होता हो तो ऐसा गृहस्थाश्रम धन्य है ।

यदि करील के पेड़ में पत्ते नहीं लगते तो वसंत ऋतु का क्या अपराध ? यदि उल्लू को दिन में नहीं दिखाई देता तो सूर्य का क्या दोष ? यदि चातक के मुँह में वर्षा नहीं पड़ती तो मेघ का कुछ दोष नहीं । बात यह है कि जो कुछ ब्रह्मा ने ललाट में लिख दिया है उसे कोई मिटा नहीं सकता ।

साधु पुरुष का दर्शन बड़ा पुण्यदायक है क्योंकि साधु तीर्थ रूप हैं । तीर्थ तो कुछ समय पाकर फल देते हैं पर साधु का संग तत्काल फल देता है ।

शरीर नाशमान है । सम्पत्ति भी सदा नहीं रहती और मौत सदा साथ ही रहती है । इसलिए धर्म का संग्रह करना चाहिए ।

जो मनुष्य दूसरे की स्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को ढेले के समान और सब प्राणियों को अपने समान देखता है, वही परमात्मा को देख सकता है।

जो पुरुष बिना विचारे ख़र्च कर डालता है, सहायक के न रहने पर भी लड़ाई झगड़ा कर बैठता है और पराई स्त्रियों को बुरी दृष्टि से देखता है, वह जल्द ही नष्ट हो जाता है।

जैसे क्रम क्रम से एक एक बूँद पानी से घड़ा भर जाता है ऐसे ही थोड़ा थोड़ा करके विद्या, धन और धर्म भी इकट्ठा हो सकता है।

तेरहवाँ अध्याय।

गई बात का शोक नहीं करना चाहिए और न आगे होने वाली बात की चिन्ता। चतुर मनुष्य वर्तमान समय के कामों में जी जान से लगे रहते हैं।

आने वाले दुःख का जो पहले ही उपाय सोच लेता है और जो विपत्ति के आ जाने पर उपाय सोच लेता है, ये दोनों सुखी रहते हैं और जो

केवल भाग्य के भरोसे बैठा रहता है वह नष्ट हो जाता है।

राजा धर्मात्मा हो तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है राजा पापी हो तो प्रजा भी वैसी ही होती है। बात यह कि प्रजा राजा के अनुसार होती है। जैसा राजा वैसी प्रजा।

अधर्मात्मा मनुष्य जीता हुआ भी मुर्दा है और धर्मात्मा मरा हुआ भी ज़िंदा है।

मन चाहा सुख किसको मिलता है? किसी को नहीं। यह सब दैवाधीन है। इसलिए सन्तोष रखना चाहिए।

जैसे हज़ारों गायों में भी बछड़ा अपनी माँ के ही पास चला जाता है, इसी तरह जो कुछ कर्म किया जाता है सो सब करने वाले ही को मिलता है।

यद्यपि फल कर्म के अधीन होता है और बुद्धि कर्म के अनुसार होती है तथापि विचार-शील जन सब काम विचार कर ही करते हैं।

चौदहवाँ अध्याय ।
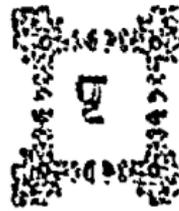
पृथिवी में तीन ही रत्न हैं—जल अन्न और प्रिय वचन । पर मूर्खों ने जड़ पदार्थों के टुकड़ों का ही नाम रत्न रख छोड़ा है ।

जीवों को अपने पाप रूप वृक्ष के दरिद्रता, रोग, दुःख और बन्धन ये फल मिलते हैं ।

धन, मित्र, स्त्री और पृथ्वी बार बार मिल सकती हैं, पर यह मनुष्य शरीर बारबार नहीं मिलता ।

यह बात बिलकुल सच है कि मनुष्यों का समुदाय शत्रु को जीत लेता है । जैसे एक एक तिनके से बना हुआ छप्पर वर्षा के जल को रोक लेता है ।

जल में तेल, दुर्जन में छिपी बात, सुपात्र में दान, बुद्धिमान् में शास्त्र, ये थोड़े थोड़े भी हों तो भी बढ़ जाते हैं ।

जीना उसी मनुष्य का सफल है जो गुणी और धर्मात्मा हो । गुण-धर्म से हीन मनुष्य का जीना व्यर्थ है ।

बुरों का साथ छोड़ कर साधु की संगत करनी चाहिए और रात दिन पुण्य ही करे, और ईश्वर को नित्य याद करे, क्योंकि संसार अनित्य है।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

जिसका कोमल चित्त प्राणियों पर दया से पिघल जाता है उसको ज्ञान से, मोक्ष से, जटा से और भस्म लगाने से क्या?

खल और काँटे से बचने के दो ही उपाय हैं। एक तो जूते से उनका मुँह रगड़ना या उनसे दूर रहना।

मैले कपड़े पहनने वाले को, जिसके दाँतों में मैला भरा रहता हो उसको, बहुत खाने वाले को, कठोर वाणी बोलने वाले को, सूर्य के निकलते और छिपते समय सोने वाले को, लक्ष्मी छोड़ देती है, चाहे वह साक्षात् विष्णु ही क्यों न हो।

मित्र, स्त्री, सेवक और बन्धु निर्धन मनुष्य को छोड़ देते हैं। यदि वही फिर धनी हो जाय तो वे

सम्बन्धी फिर उसी के हो जाते हैं। मतलब यह कि संसार में धन ही बन्धु है।

अन्याय से कमाया हुआ धन दस बरस तक ठहरता है। ग्यारहवें बरस के आते ही वह सब नष्ट हो जाता है।

चाहे मणि पैरों में लोटती हो और काँच सिर पर रख लिया जाय, पर बेचते समय काँच काँच ही है और मणि मणि ही।

बन्धन तो बहुत हैं पर प्रेम की रस्सी का बन्धन कुछ और ही है। काठ को भी छेद सकने वाला भौंरा कमल के कोश में बँध कर बिलकुल बे-काम हो जाता है।

सोलहवाँ अध्याय।

गुणों के कारण मनुष्य उत्तम और ऊँचा गिना जाता है। ऊँचे आसन पर बैठने से उत्तम नहीं होता। महल की ऊँची अटारी पर बैठा हुआ कौआ क्या गरुड़ हो सकता है?

तिनका वड़ा हलका होता है। रुई उस से भी हलकी होती है। रुई से भी हलका याचक (माँगने वाला) होता है। तो फिर इसे वायु क्यों नहीं उड़ा ले जाता? वह इसलिए कि कहीं यह मुझ से भी न माँगने लगे।

मानभंग होने से मरना अच्छा। मरने से एक वार दुःख होता है और मान के नाश होने पर दिन दिन।

मीठा बोलने से सबको सुख होता है। इसलिए मीठी वात ही कहनी चाहिए। वचन में दरिद्रता क्या?

संसार रूपी वृक्ष वड़ा कड़ुवा है, पर इसके दो फल वड़े मीठे हैं। एक रसीला मीठा वचन, दूसरा सज्जन के साथ संगति।

जो विद्या पुस्तक में है अर्थात् कण्ठस्थ नहीं और जो धन दूसरे के हाथ में है, अपने पास नहीं है, तो काम पड़ने पर न वह विद्या काम की, न धन।

सत्रहवाँ अध्याय ।

उपकार करने पर दूसरे के साथ उपकार करना चाहिए और मारे पर मारे। इस में कुछ अपराध नहीं। दुष्ट के साथ दुष्टता ही करनी चाहिए।

यदि लोभ है तो दूसरे दोषों से क्या? यदि कोई निन्दक है तो और पापों से क्या? यदि सत्यता है तो और तप से क्या? यदि मन शुद्ध है तो तीर्थ से क्या? यदि सज्जनता है तो और गुणों से क्या? यदि महिमा है तो और भूषणों से क्या? यदि अच्छी विद्या है तो धन से क्या? और यदि अपयश है, अकीर्त्ति है, तो मृत्यु से क्या?

अन्न और जल के समान कोई दान नहीं है; गायत्री से बढ़ कर कोई मन्त्र नहीं है और माता से बढ़ कर कोई देवता नहीं।

साँप के दाँत में; मक्खी के शिर में और बिच्छू की पूँछ में विष रहता है; पर दुर्जन का सारा शरीर विष से भरा रहता है।

हाथ की शोभा दान से है, कंकण से नहीं। शरीर स्नान से शुद्ध होता है, चन्दन से नहीं। तृप्ति सम्मान से ही होती है, भोजन से नहीं। मुक्ति ज्ञान से ही होती है, छापा तिलक आदि से नहीं।

जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार रहता है, उनकी विपत्ति नष्ट हो जाती है। उनको पद पद पर सम्पत्ति मिलती है।

खाना, सोना डर आदि बातें पशुओं और मनुष्यों में समान ही होती हैं, पर मनुष्यों में केवल ज्ञान ही की विशेषता है। जिनमें ज्ञान नहीं वे पशु के समान हैं।

अथ विदुरनीति

पहला अध्याय।

एक समय धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा कि मैं महात्मा विदुर को देखना चाहता हूँ, तुम उन्हें यहाँ जल्दी बुला लाओ। यह सुन दूत झट विदुर के पास गया। उसने विदुर जी से कहा कि आपको महाराज धृतराष्ट्र देखना चाहते हैं। सुनते ही विदुर चल पड़े। आकर द्वारपाल से कहा कि मेरा आना धृतराष्ट्र से जा कहो। द्वारपाल ने धृतराष्ट्र से विदुर जी के आने का समाचार कहा। उसने कहा कि विदुर जी द्वार पर खड़े है। आपके चरणदर्शन की इच्छा रखते हैं। मुझे आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ? यह सुन धृतराष्ट्र ने कहा—दूरदर्शी विदुर को जल्द मेरे पास भेजो। मैं उनके दर्शनों के लिए कभी रुकावट नहीं समझता।

यह सुन झट द्वारपाल विदुर के पास पहुँचा। उसने विदुर जी से कहा कि महाराज आइए। महाराज धृतराष्ट्र आपको देखा चाहते हैं।

यह सुन विदुर जी राजभवन में गये। वहाँ जाकर उन्होंने धृतराष्ट्र से बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर कहा कि मैं आपकी आज्ञा से आगया हूँ। मेरे योग्य कोई काम हो तो आज्ञा कीजिए।

धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर, महामति सञ्जय मेरी निन्दा करके चला गया। वह कल आकर सभा में युधिष्ठिर का समाचार कहेगा। सो वह समाचार मैंने नहीं जाना। वह मेरे शरीर को जला रहा है। उसी ने मुझे प्रजागर किया है। उसी के कारण मुझे रातदिन नींद नहीं आती। सो जागते हुए और जलते हुए के लिए कोई शान्तिदायक उपाय आप कहिए। क्योंकि आप धर्म में और अर्थ में चतुर हैं। जबसे पाण्डवों के पास से सञ्जय आया है तब से मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। मेरी सब इन्द्रियां ने अपने अपने काम छोड़ दिये हैं। "सञ्जय क्या समाचार सुनावेगा" बस यही एक बड़ी भारी चिन्ता मुझे सता रही है।

विदुर जी महाराज नीति-शास्त्र में बड़े कुशल थे। यह सुन कर उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि—

हे राजन्! नींद तो इन छे आदमियों को नहीं आती १—बलवान् से दबाये हुए को, २—दुर्बल को ३—साधनरहित को, ४—जिसका किसी ने धन चुरा लिया हो उसको, ५—कामी को और ६—चोर को।

हे राजन्! कहीं इन छहों में तो तुम नहीं आ गये? तुम में ऊपर लिखे हुए दोष तो नहीं हैं? या तुम किसी दूसरे के धन लेने की इच्छा करते हुए दुःखित तो नहीं होते?

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने विदुर जी से कहा—हे विदुर! मैं आपके धर्म-युक्त वचनों को सुना चाहता हूँ। आपके वचन कल्याण-कारक हैं। इस वंश में आपही एक धर्मज्ञ पण्डित हैं।

विदुर जी बड़े स्पष्टवक्ता थे। वे साफ़ कह दिया करते थे। उन्होंने कहा—हे धृतराष्ट्र! जो राजाओं के उत्तम लक्षणों से युक्त था, जो अपने गुणों से तीनों लोकों का राज्य भोगने योग्य था और जो आपका बड़ा भक्त, बड़ा सेवक था, वह युधि-

ष्ठिर तुमने वन भेज दिया। तुमने उसे वनवास करा दिया। यद्यपि तुम धर्मात्मा और पण्डित हो तथापि नेत्रहीन होने से—अन्धे होने से—तुम राज्यलक्षणों से रहित हो। इसी लिए तुम राज्य भोगने के योग्य नहीं हो। युधिष्ठिर किसी जीव की हिंसा नहीं करता; वह बड़ा दयालु है; वह धर्मात्मा है, सत्य-वादी है और पराक्रमी है, इसीलिये तुम्हारे बड़प्पन के ख़याल से वह अनेक कष्ट सह रहा है।

हे राजन्! दुर्योधन को, सौबल को, कर्ण को और दुःशासन आदि को राज्याधिकार देकर तुम अपना मंगल क्यों चाहते हो?

जो जीवात्मा परमात्मा को जाने, जो अच्छे अच्छे काम करता रहे, जो सहन-शील हो, जो सदा धर्म ही करता हो, और जो धन के लोभ में न फँसता हो वही पण्डित है। वही चतुर है।

जो अच्छे अच्छे काम करता है और बुरे बुरे छोड़ देता है, जो नास्तिक नहीं है अर्थात् आस्तिक है और जो श्रद्धालु है, वही पण्डित है।

क्रोध, हर्ष, अभिमान, लज्जा, धैर्य्य, मान ये जिस पुरुष को अर्थ से विचलित नहीं करते उसे ही पण्डित कहते हैं।

जिसके विचार को और विचारे हुए काम को कोई नहीं जानता और सिद्ध हुए काम को सब जानते हैं, वही पण्डित है।

जिसके काम को सरदी, गर्मी, डर, काम, समृद्धि और निर्धनता नहीं बिगाड़ती वही पण्डित है।

जिसकी बुद्धि धर्म और अर्थ की अनुयायिनी होती हैं और जो काम से अर्थ को स्वीकार करता है वही पण्डित कहाता है।

जो अपनी शक्ति के अनुसार काम करना चाहते हैं, जो यथाशक्ति काम करते हैं और किसी का अपमान नहीं करते, वही पण्डित कहलाते हैं।

जो जल्द जान जाता है और जो देर तक सुनता है, जो अच्छी तरह समझ कर काम करता है, जो व्यर्थ दूसरे के काम में नहीं बोलता, वही पण्डित है।

जो प्राप्त न होने योग्य वस्तु की इच्छा नहीं करते; नष्ट हुई वस्तु का जो शोक नहीं करते और जो महा-विपत्ति में भी नहीं घबराते, उन्हें पण्डित समझना चाहिए।

जो ख़ूब निश्चय करके काम आरम्भ करता है और विघ्न होने पर भी जो बीच ही में काम को नहीं छोड़ देता, जिसका समय व्यर्थ नहीं जाता और जिसका मन वश में रहता है वही पण्डित है। जो सदा उत्तम कामों में मन लगाते हैं जो सदा, मङ्गलदायक काम करते हैं, जो किसी के हित की बुराई नहीं करते, हे धृतराष्ट्र! वे ही पण्डित हैं।

जो अपने सत्कार से प्रसन्न नहीं होता और जो अनादर में दुःखित नहीं होता, जो गंगा के कुंड के तरह सदा गम्भीर, अचल रहता है, वही पण्डित है।

जो सब प्राणियों की असलियत जानता है, जो सब कामों के योग को जानता है, और जो मनुष्योचित सब कामों के उपायों को जानता है, वही पण्डित है।

जो बोलने में बड़ा चतुर हो, जिसकी कथन-प्रणाली विचित्र हो, जो चेष्टाओं को समझता हो, जो प्रतिभासम्पन्न हो, और जो किसी भी ग्रन्थ को बड़ी जल्दी कह सके, उसके अर्थ को समझ जाय, वही पण्डित है।

जिसकी बुद्धि के पीछे शास्त्र चलता है और जिसकी बुद्धि शास्त्र के पीछे चलती है; जो आर्य-पुरुषों की मर्यादा को नहीं तोड़ता, वही पण्डित नाम पाता है।

जिसने पढ़ा सुना तो कुछ भी न हो और बातें पढ़े लिखों की सी करे, अपने को पण्डित माने; और जो है तो दरिद्री पर मनोरथ बड़े बड़े करे, और जो काम तो कुछ करे नहीं और फल चाहे, तो ऐसे मनुष्य को पण्डित जन मूर्ख कहते हैं।

जो मनुष्य अपने अर्थ को त्याग कर दूसरे के अर्थ का अनुष्ठान करता है, और मित्र के साथ मिथ्या व्यवहार करता है, वह मूर्ख है।

जो मनुष्य चाहने वालों को तो चाहता नहीं और न चाहने वालों को चाहता है, और जो बल-वान् से बैर करता है वह मूर्ख है।

जो शत्रु को मित्र बनाता है और मित्र से द्वेष करता है, उसको मारता है, और जो बुरे कामों का अनुष्ठान करता है उसे मूर्ख कहते हैं।

जो बहुत से काम फैला बैठता है और जगह जगह, काम काम में, शंका करता है और जल्द करने योग्य कामों में देर करता है वह मूर्ख है।

जो अपने पितरों को श्रद्धापूर्वक अन्नजलादि नहीं देता, जो हवनादि से देवताओं का पूजन नहीं करता, जो अच्छा मित्र नहीं रखता उसको मूर्ख कहते हैं।

जो विना बुलाये जाता है और विना पूछे बहुत बोलता है और जो अविश्वासी में विश्वास करता है वह अधम मूर्ख है।

जो दूसरे को दोष लगाता है और आपे में वही दोष है और जो असमर्थ होकर क्रोध करता है वह मूर्ख है।

जो मनुष्य अपना बल न जान कर धर्मार्थ से रहित अलभ्य पदार्थ की प्राप्ति की इच्छा करता है और काम कुछ करता नहीं उसे पण्डित जन मूर्ख कहते हैं।

हे राजन्, जो कुशिष्य को शिक्षा देता है और शून्य की उपासना करता है और नीच जन की सेवा करता है वह मूर्ख है।

हे राजन्, बहुत धन विद्या और ऐश्वर्य्य को पाकर भी जो अभिमान नहीं करता वही पण्डित है।

जो अपने कुटुम्बियों को छोड़ कर अकेला स्वादु भोजन करता है और आप अकेला ही उत्तम उत्तम कपड़े पहनता है उससे बढ़ कर और कौन निन्दित होगा।

धनुषधारी से छोड़ा हुआ बाण किसी एक को मारे या न भी मारे, परन्तु बुद्धिमान् की चलाई हुई बुद्धि राजा-सहित देश को मार डालती है।

विषरस एक ही को मारता है और शस्त्र भी एक को ही मारता है। पर मन्त्र का विप्लव (सलाह की फूट) राजा सहित देश को नष्ट कर डालता है।

अकेला स्वादु पदार्थ न खावे, न अकेला किसी काम का विचार करे, न मार्ग में अकेला चले और बहुत से सोते हुओं के बीच में अकेला जागे भी नहीं।

हे राजन्, एक ही ऐसी अनुपम वस्तु है जो संसाररूपी समुद्र के लिए नाव है: और, स्वर्ग की सीढ़ी भी वही है। वह 'सत्य है'। सो तुम उसे नहीं जानते।

क्षमाशील जनों में बस दोष है तो सिर्फ़ एक यही कि जब वह क्षमा करता है तब मूर्ख लोग उसे

निर्बल समझ लेते हैं। सो वह उनका दोष नहीं जानना चाहिए, क्योंकि क्षमा बड़ा भारी बल है। अशक्तों अर्थात् निर्बलों का तो क्षमा गुण है ही, पर समर्थों का भी क्षमा भूषण है। बलवानों की शोभा क्षमा से ही होती है।

क्षमा संसार भर को वश में कर देती है। क्षमा से क्या नहीं हो सकता? जिसके हाथ में क्षमा-रूपी तलवार है उसका दुष्ट जन कुछ भी नहीं कर सकते।

जहाँ फूस न होगा वहाँ अग्नि क्या कर सकता है। ऐसी जगह अग्नि स्वयमेव शान्त हो जाता है। जिसमें क्षमा नहीं वह अनेक दोषों का भण्डार हो जाता है।

एक धर्म ही परम कल्याण है। एक क्षमा ही उत्तम शान्ति है। विद्या ही एक परम तृप्ति है और एक अहिंसा ही परम सुख देने वाली है।

बिल में रहने वाले चूहे आदि जीवों को जिस तरह साँप निगल जाता है, इसी तरह शत्रु से लड़ाई झगड़ा न करने वाले राजा को और घर से न निकलने वाले ब्राह्मण को भूमि खा जाती है।

दो काम करता हुआ ही पुरुष इस संसार में शोभा पाता है। एक तो दुर्जनों का सत्कार न करना और दूसरे कोमल बोलना।

दो काँटे बड़े तीक्ष्ण हैं। ये शरीर को सुखा डालते हैं। एक तो निर्धन होकर बड़ी बड़ी इच्छायें करना, दूसरे असमर्थ होकर क्रोध करना।

ये दो मनुष्य अपने विरुद्ध कामों से शोभा नहीं पाते। जो गृहस्थ होकर कुछ काम न करे वह, और जो भिक्षुक बहुत से काम करे वह, ये दोनों विपरीत कर्म करने वाले हैं।

ये दो मनुष्य स्वर्ग को पाते हैं—१—ऐश्वर्यशाली होकर क्षमायुक्त हो और २—दरिद्र होकर दान दे।

न्याय से कमाये हुए धन के लिए दो द्वार उलटे हैं। एक अपात्र में देना और पात्र में न देना।

इन दो मनुष्यों की कीर्ति सूर्य के तेज के समान प्रकाशमान होती है। एक योगाभ्यासी संन्यासी की, और दूसरे सामने युद्ध में मरने वाले की।

हे राजन्! स्त्री, सेवक, और पुत्र ये तीनों अधन हैं। इनके पास का धन भी उसीका है जिसके ये हैं।

दूसरे का धन चुराना, पर-स्त्री का संग करना और मित्रों का त्याग करना; ये तीन काम नाश करने वाले हैं। ये काम छोड़ देने चाहिएँ।

जो अपना भक्त हो, जो अपनी सेवा करता हो, और जो "मैं आप का हूँ" ऐसा कहे; इन तीनों को आपत्काल में नहीं छोड़ना चाहिए।

राजा को चाहिए कि इन चारों मनुष्यों के साथ किसी काम का विचार, सलाह, न करे। वे चार ये हैं १—थोड़ी बुद्धि वाला, २—दीर्घसूत्र अर्थात् महा आलसी, ३—शीघ्रकारी अर्थात् जल्द बाज़, और ४—ख़ुशामदी।

हे धृतराष्ट्र! मनुष्य को इन पाँचों की, जो अग्नियों के समान हैं, सदा सेवा करनी चाहिए। पिता, माता, अग्नि, आत्मा (आपा) और गुरु।

पाँच इन्द्रिय वाले मनुष्य की यदि एक भी इंद्रिय में छिद्र हो, एक भी इन्द्रिय वश में न हो, तो उसी में से उसकी बुद्धि ऐसे टपक जाती है जैसे फूटे पात्र में से पानी।

उन्नति चाहने वाले मनुष्य को ये छः दुर्गुण छोड़ देने चाहिएँ। १—नींद, २—तन्द्रा, अर्थात्

आधा सोना, ३—डर, ४—क्रोध ५—आलस्य, ६—दीर्घसूत्रता अर्थात् काम को देर में करने की आदत।

जिस प्रकार टूटी नाव को छोड़ देते हैं इसी तरह इन आगे लिखे हुए छः मनुष्यों को छोड़ देना चाहिए। १—न पढ़ाने वाला आचार्य, २—बे पढ़ा ऋत्विज, ३—रक्षा न कराने वाला राजा, ४—कठोर वचन बोलने वाली स्त्री, ५—गाँव में ही बसना चाहने वाला गोपाल और ६—बन में रहने वाला नाई।

सत्य, दान, आलस्य न करना, निद्रा न लेना क्षमा, और धैर्य, ये काम मनुष्य को कभी न छोड़ने चाहिएँ।

मनुष्य की जीवन-यात्रा में ये छः बातें सुख करने वाली होती हैं—धन का आना, सदा नीरोग रहना, और कोमल वाणी बोलने वाली प्यारी स्त्री, अपने अधीन पुत्र, धन पैदा करने वाली विद्या।

प्रमत्त (बेहोश) रहने वालों में चोर जीता है। वही उनका जीवन है। रोगियों में वैद्य जीता है। स्त्रियाँ कामियों में जीती हैं। यजमानों में याजक जीता है। झगड़ालुओं में राजा जीता है और नित्य मूर्खों में पण्डित का जीवन है।

काम निकल जाने पर छः मनुष्य, जिन से काम निकला है उनका ही, अनादर करते हैं। उनको छोड़ देते हैं। शिष्य विद्या पढ़ लेने बाद गुरु का, स्त्री आने पर पुत्र माता का, काम रहित पुरुष नारी का, काम निकल जाने पर जिससे काम सिद्ध हुआ है उसका, जल से पार हो जाने पर नाव का और रोग से छुटकारा पाने पर वैद्य का।

नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेश में न रहना, सज्जनों की संगति, अपने अधीन जीविका, निडर रहना, ये छः बातें सुख करने वाली हैं।

ईर्ष्या करने वाला, नफ़रत करने वाला, असन्तुष्ट रहने वाला, क्रोध करने वाला, नित्य दुःख में डूबा रहने वाला, दूसरे के सहारे जीने वाला, ये छः मनुष्य सदा दुःखी रहते हैं।

जो जन्म मात्र से ही नहीं किन्तु कर्म से भी ब्राह्मण हो उससे द्वेष या विरोध नहीं करना चाहिए। उलटा उसके गुणों की, विद्या की और परोपकार की सबको प्रशंसा ही करनी चाहिए। जो लोग सच्चे ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं उनको सुख नहीं मिलता।

इन आठ गुणों से मनुष्यों की बड़ी शोभा होती है। वे आठ गुण ये हैं—बुद्धि, अच्छा कुल, इन्द्रियों का रोकना, वेदों का पढ़ना, पराक्रम, थोड़ा बोलना, यथाशक्ति दान और किये हुए उपकार को मानना।

जो राजा काम और क्रोध का त्याग कर देता है, जो पात्र में धन देता है, जो हर एक बात के गूढ़ तत्त्व को समझता है, जो पढ़ा हुआ है, जो कामों को शीघ्रता से करता है; उसकी बात सारा संसार मानता है।

जो मनुष्यों को विश्वास दिलाना जानता है, जो अपराधियों का अपराध जान कर उन्हें दण्ड देता है, जो प्रमाण और क्षमा को जानता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती।

जो किसी दुर्बल को दुःख नहीं देता, जो युक्ति से समझ कर शत्रु के साथ बर्ताव करता है, जो बलवानों के साथ लड़ाई झगड़ा नहीं करता, और जो समय पर पराक्रम दिखाता है वही धीर है।

जो विपत्ति पड़ने पर कभी दुःखित नहीं होता, जो आलस्य को त्याग कर उद्योग करता है, जो समय आने पर दुःख भी सहता है, वही भार को उठाने

वाला महात्मा, वही धुरन्धर वीर, शत्रुओं को जीतता है।

जो कभी अनर्थ नहीं करता, जो घर ही में रहता है, जो पापियों से मेल नहीं रखता, जो दूसरों की स्त्रियों को बुरी दृष्टि से नहीं देखता, जो पाषण्ड, चोरी, चुग़ली और मद्यपान नहीं करता, वही सुखी रहता है।

जो बिना विचारे काम नहीं करता, जो पूँछने पर ठीक उत्तर देता है, जो मित्रों के साथ लड़ाई झगड़ा नहीं करता, और जो तिरस्कार पाकर भी क्रोध नहीं करता वही बुद्धिमान् है।

जो मनुष्य किसी के सुख को देख कर डाह नहीं करता, जो दुर्बल से विरोध नहीं करता, जो बहुत नहीं बोलता और जिसमें पूरी सहनशक्ति है वह सब जगह बड़ाई पाता है।

जो मनुष्य कभी घमण्ड नहीं करता, जो अपने करतब की अपने मुँह से बड़ाई नहीं करता और जो थोड़ी सी भी कभी किसी से चुभती बात नहीं कहता, उसे सारा संसार प्यार करता है।

जो दबे हुए झगड़े को फिर से नहीं प्रकट करता, जो ज़रा भी घमण्ड नहीं करता, और जो अपने

को दुर्बल समझ कर बुरा काम नहीं करता, उत्तम जन उसको अच्छे स्वभाव वाला कहते हैं।

जो अपने ही सुख में सुखी नहीं होता, किन्तु दूसरे का भी सुख चाहता है, जो दूसरे के दुःख को देख कर प्रसन्न नहीं होता और जो देकर पीछे पछतावा नहीं करता, उसे सज्जन आर्यशील कहते हैं।

जो बुद्धिमान् मनुष्य देश के समस्त व्यवहारों को, समय को, जाति के धर्मों को जान कर उनके अनुसार बर्ताव करता है वह आदि और अन्त को जानता है। वह जहाँ कहीं भी चला जावे वहीं श्रेष्ठ मनुष्यों का अधिपति हो जाता है। श्रेष्ठ जन उसे अपना राजा बना लेते हैं।

जो मनुष्य दम्भ, अभिमान, पाप, राजा से वैर, निन्दा, किसी समाज से द्वेषभाव मतवाले और दुर्जन मनुष्यों के साथ बात चीत करना छोड़ देता है वही उत्तम है।

जो मनुष्य नित्य दान करता है, सबसे प्रीति रखता है, देवताओं का सत्कार करता है, सदा अच्छे काम ही किया करता है और जो सदा पापों से

बचता रहता है और संसार-समाचारों को नित्य जानता रहता है; उसकी देवता लोग सहायता करते हैं।

जो मनुष्य अपने अधीन रहने वालों को देकर उन्हें भी चीज़ बाँट कर खाता है, जो बहुत काम करके नियमपूर्वक सोता है और जो शत्रुओं को भी, माँगने पर देता है उसके पास से अनर्थ कोसों भाग जाते हैं। अर्थात् उसका कभी अनर्थ नहीं होता।

जिस मनुष्य के विचार किये हुए कामों को, सलाहों को, कोई नहीं जानता किन्तु काम सिद्ध हो जाने पर सब जान लेते हैं, ऐसे मनुष्य का कोई नहीं बिगड़ता। उसके सभी काम बन जाते हैं।

जो सब प्राणियों की भलाई चाहता है, जो सदा सच और मीठा बोलता है, जो योग्य पुरुषों का मान करता है, जिसका हृदय शुद्ध रहता है, वह मनुष्य अपने कुटुम्ब में शिरोमणि होता है।

जो मनुष्य स्वभाव ही से पाप कर्मों से घृणा करता है वह सारे संसार का गुरु है। वह बड़ा तेजस्वी, प्रसन्नचित्त, सावधान और सूर्य के समान तेज से प्रकाशित होता है।

इस प्रकार नीतिसम्बन्धी अनेक उपदेश सुना कर विदुर जी ने धृतराष्ट्र से यह भी कहा कि—हे राजन्! महाबली राजा पाण्डु के, वन में, इन्द्र के समान पाँच पुत्र पैदा हुए। तुमने ही उनका पालन पोषण किया और तुम्हीं ने उन्हें शिक्षित किया। वे अब भी तुम्हारी ही आज्ञा से वन में बस रहे हैं। हे तात! उन्हें उचित राज्य दीजिए। आप पुत्रों के साथ प्रसन्न होकर रहिए। हे राजन्! देवताओं में और मनुष्यों में तुम्हारी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है।

दूसरा अध्याय।

इतना सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा कि—हे तात! तुम धर्म में और अर्थ में कुशल हो, इस लिए कोई ऐसी बात कहो जिस में जान बूझ कर जलते हुए को शान्ति मिले। हे महाबलिष्ठ! विदुर जी, आप सब जानते हैं, इस लिए आप मुझ से युधिष्ठिर का विचार कहिए। आप मुझे ऐसी बात सुनाइए जिससे कौरवों का

कल्याण हो। मैं पापों में शङ्का करता हूँ और पापों को ही देखता हुआ घबराकर आप से पूछता हूँ। हे चतुर विदुर! जो कुछ वन में युधिष्ठिर ने विचारा हो वह मुझे सब यथावत् समझा कर कहिए।

यह सुनकर विदुर जी ने कहा कि मनुष्य जिस का भला चाहे उसके लिए ज़रूर सम्मति दे। चाहे वह पूछे या न पूछे, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, चाहे वह प्रिय हो या अप्रिय। हे राजन, जिसमें कौरवों का कल्याण है वही बात मैं कहता हूँ। सुनिए।

हे राजन्! "मैं राजा हो गया" इतने ही से कोई अनुचित काम नहीं करना चाहिए। क्योंकि नम्रता न होने से धन का नाश हो जाता है। जैसे बुढ़ापे में सुन्दर रूप का।

उन्नति चाहने वाले को, खाने योग्य और खाकर जल्द पच जाने योग्य, वस्तु ही खानी चाहिए। उसे यह भी ख़ूब सोच रखना चाहिए कि यह खाया हुआ पदार्थ हितकारी भी होगा या नहीं।

जो मनुष्य पेड़ से कच्चे फल तोड़कर इकट्ठा करता है, वह उनके रस को नहीं पा सकता। उन

का बीज भी नष्ट हो जाता है। और जो मनुष्य समय पर पके हुए फल लेता है, वह उन फलों से रस पाता है और उनके बीज से फिर फलों को भी पा सकता है।

"मेरा यह करने से क्या होगा और यह न करने से क्या होगा" यह विचार कर काम करना चाहिए या न करना चाहिए।

जिस का क्रोध या प्रसन्नता निष्फल है उस राजा को प्रजा स्वामी नहीं माना करती।

जो राजा बैठा हुआ भी सब प्रजा को प्यार से देखा करता है, उसकी प्रजा भी उससे ख़ूब प्रसन्न रहती है अच्छा हो तो करे और बुरा हो तो न करे।

जिस तरह अपने मारने वाले से हिरन डर कर दूर भागा करते हैं इसी तरह जिस राजा से प्रजा को दुःख पहुँचता है वह प्रजा भी उससे दूर ही रहा करती है। ऐसा राजा चाहे जितना विशाल राज्य का स्वामी हो तो भी वह नष्ट हो जाता है।

अनीति का वर्त्ताव करने वाला पुरुष अपने पहले शुभ कर्मों से अपने पुरखों के राज्य को पाकर

इस प्रकार जल्द नष्ट हो जाता है जिस तरह वायु से बादल।

जिस राजा ने शुरू ही से सदाचार किया हो उसकी पृथ्वी धन-रत्नों से भरपूर होकर बढ़ता रहती है।

जो राजा धर्म को छोड़कर अधर्म के काम करने लगता है उसकी पृथिवी सिकुड़ती जाती है। उस का राज्य धीरे धीरे कम हो जाता है। जैसे आग में डालने से चमड़ा।

धर्म से राज्य पाकर धर्म से ही उसका पालन करे। धर्म ही है मूल जिसकी ऐसी लक्ष्मी को पाकर मनुष्य उसे नहीं छोड़ता और न लक्ष्मी ही उस पुरुष को छोड़ती है।

धीर पुरुष को चाहिए कि वह सब जगह से मीठा बोलना आदि अच्छे ही अच्छे काम सीखे; जैसे शिलाहारी खेत में गिरे हुए अन्न को बीन लेता है।

जो वस्तु बिना तपाये नरम हो सकती है मुड़ सकती है, उसे कोई नहीं तपाता। जो लकड़ी स्वयं लची रहती है उसे कोई लचाने की कोशिश नहीं करता।

इसी मिसाल से धीर पुरुष को चाहिए कि वह बलवान् से नमे; उसके साथ नम्रता से बर्ते। जो बलवान् से नर्माई का बर्ताव करता है वह मानों इन्द्र के लिए नमता है।

सत्य से धर्म की, योगाभ्यास से विद्या की, शुद्धि करने से रूप की और आचरणों से कुल की रक्षा होती है।

चाहे कैसेही अच्छे कुल में पैदा हुआ हो पर जो सदाचारी न हो, वह ठीक नहीं है। चाहे कोई शूद्र ही क्यों न हो पर अच्छा आचरण रखता हो तो उस का विशेष प्रमाण है।

शराब के नशे में बेहोश होकर मनुष्य पागल सा हो जाता है। उस समय वह न करने योग्य कामों को करता है और करने योग्यों को नहीं करता और अपने छिपे हुए भेद भी कह डालता है; इस लिए जो मनुष्य अकार्य्य न करना चाहे, करने योग्य काम करना चाहे और अपने भेद न खोलना चाहे तो वह कभी शराब न पीवे।

विद्या का, धन का और कुटुम्ब का मद नीच पुरुषों को ही होता है, श्रेष्ठोंको नहीं। विद्या, धन और कुटुम्ब से सज्जन सुख पाते हैं और दुर्जन दुःख।

सुन्दर वस्त्रों वाला पुरुष सभा को जीत लेता है; सभा में प्रतिष्ठा पाता है; गायों वाला मीठे को जीत लेता है, सवारी वाला मार्ग को जीत लेता है और सुशील पुरुष सारे संसार को जीत लेता है।

पुरुषों में शील ही मुख्य है। जिस में वह नहीं उसका जीना, उसका धन और उसका कुटुम्ब सब व्यर्थ है।

निर्धन मनुष्य अन्न को ख़ूब स्वादु बनाकर खाता है। बात यह है कि भूक ही स्वादु पैदा कर देती है। निर्धनों को चाहे जैसा अन्न मिले वे उसे बड़ी प्रीति से स्वादु समझ कर ही खाते हैं. परन्तु वह भूक धनी पुरुषों में होनी कठिन है।

नीच जनों को जीविका न होने से, मध्यम पुरुषों को मृत्यु से और उत्तम पुरुषों को अपमान से भारी डर रहता है।

शराब के मद से भी ऐश्वर्य्य का मद बहुत भारी होता है। ऐश्वर्य्य का मद करने वाला मनुष्य बिना गिरे नहीं समझता।

जो राजा मन को न जीतकर मन्त्री आदि को जीतना चाहता है और मन्त्रियों को न जीत कर

शत्रुओं को जीतना चाहता है. वह अवश होकर, जल्द नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य शत्रुओं को जीतना चाहता है वह पहले अपने मन को जीते, फिर मन्त्रियों को और फिर शत्रुओं को।

इन्द्रियों को वश में करने वाले, मन को अपने अधीन करने वाले, अपराधी को दण्ड देने वाले, खूब विचार कर काम करने और सदा धीर रहने वाले पुरुष को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती।

इन्द्रियों को वश में न रखने वाला पुरुष दुःख को सुख, अर्थ को अनर्थ और अनर्थ को अर्थ मान लेता है।

जो धर्म और अर्थ की परवा न करके इन्द्रियों के अधीन होकर उन्हीं के पीछे चलने लगता है वह लक्ष्मी, प्राण और स्त्री से जल्द अलग हो जाता है।

जो मनुष्य इन्द्रियों का स्वामी (वश में रखने वाला) न होकर धनादि का स्वामी होता है वह धनादि से जल्द ही अलग हो जाता है।

जिसने अपने मन को जीत लिया उसका मन ही बन्धु है, क्योंकि वही मन आत्मा का बन्धु है और वही शत्रु है।

जो मनुष्य धर्म और अर्थ को विचार कर काम के भार को उठाता है वही सुख पाता है, वही बढ़ता है। काम को बिना विचारे कभी नहीं करना चाहिए।

यदि धर्मात्मा मनुष्य भी पापियों के साथ मेल रक्खें, उनसे अलग न हों तो वे भी उनके साथ दण्ड पाते हैं। जैसे सूखी लकड़ी के साथ गीली लकड़ी भी जल जाती है। इसलिए दुष्ट जनों के साथ मेल न रखना चाहिए।

आत्मा का ज्ञान, थकावट का न होना, सहनशीलता, नित्य धर्म करना, वाणी को वश में रखना और दान; ये काम नीच पुरुषों में नहीं होते।

दुष्ट पुरुषों का दूसरों को दुःख देना ही बल है; राजाओं का बल दण्ड देना है; स्त्रियों का बल सेवा; और गुणी पुरुषों का क्षमा ही बल है।

हे राजन्, वाणी का रोकना, उस का वश में रखना बड़ा कठिन है। अच्छी कही हुई वाणी अनेक प्रकार के सुख देती है और वही वाणी जो बुरी कही जाय तो नाना प्रकार के अनर्थों को पैदा करती है।

बाणों से छेदा हुआ और फरसा से काटा हुआ वन समय पाकर फिर हरा हो जाता है, परन्तु

कटुवचन बड़ा भयङ्कर होता है। बाणी का घाव फिर नहीं भरता।

कर्णी, नालिक, और नाराच आदि बाण यदि शरीर में लगें तो वे अलग निकाल कर फेंके जा सकते हैं। पर हृदय में चुभने वाले वचन रूपी बाणों को कोई नहीं निकाल सकता।

जिस मनुष्य को देवता-परमात्मा-पराजित करना चाहते हैं, नष्ट करना चाहते हैं, वे पहले उसकी बुद्धि हर लेते हैं। फिर वह सब बातें उलटी ही सोचा करता है। बुद्धि के मलिन होने पर, जब नाश होने का समय आ जाता है, तब उसे अनीति भी नीति ही दिखाई देने लगती है। वह हृदय से नहीं निकलती।

हे धृतराष्ट्र वही नाशकारिणी बुद्धि अब तुम्हारे पुत्रों की हो रही है। वे सब पाण्डवों से द्वेष कर रहे हैं। पर तुम इस बात को नहीं जानते।

हे राजन्, युधिष्ठिर में राजाओं के सम्पूर्ण लक्षण वर्त्तमान हैं। वह राज्य भोगने के योग्य है। वह तीनों लोकों का स्वामी हो सकता है। वह तुम्हारा ही शिष्य है। उसे अवश्य राजा होना चाहिए। वह धर्म

और अर्थ को पहचानने वाला युधिष्ठिर बड़ा तेजस्वी और महाबुद्धिमान् है। आप के पुत्रों को उचित है कि ऐसे युधिष्ठिर को उसका भाग (हिस्सा) दे दें। हे राजन्! वह युधिष्ठिर बड़ा दयालु है। वह धर्मात्माओं में श्रेष्ठ है। वह सिर्फ़ तुम्हारे बड़प्पन को देख कर अनेक दुःख सह रहा है।

तीसरा अध्याय

इतना कुछ सुन लेने के बाद धृतराष्ट्र ने विदुर जी से कहा कि आप धर्म और अर्थसंयुक्त वचन और कहें। आप इस विषय के एक ही विचित्र वक्ता हैं। इसके सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती।

विदुर जी ने कहा—हे राजन्, सब तीर्थों में स्नान करना और सब प्राणियों से कोमलता का वर्त्ताव करना, ये दोनों बराबर हैं; बल्कि मेरी राय में कोमलता का वर्ताव कुछ विशेष है। इसलिए आप अपने पुत्रों में कोमलता का उपदेश करें। कोमलता से मनुष्य कीर्त्ति को पाकर मर कर स्वर्ग भोगता है। जब तक मनुष्य की लोक में कीर्त्ति

रहती है तब तक वह स्वर्ग में सुख भोगता है। इसी विषय में एक पुराना इतिहास भी है। वह, केशिनी के लिए विरोचन और सुधन्वा का संवाद है। वह इस प्रकार है:—

एक केशिनी नाम की कन्या थी। वह बड़ी सुन्दरी थी। उस का स्वयंवर रचा गया। स्वयंवर में वह अपने तुल्य रूपगुण वाला पति देखने लगी। उस स्वयंवर में विरोचन भी आया था। वह दैत्य का पुत्र था। उसे देख कर केशनी ने उससे कहा कि हे विरोचन, ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य? यह सुधन्वा पलँग पर क्यों नहीं बैठते?

यह सुन विरोचन ने कहा कि हे केशिनी, प्रजापति के पुत्र श्रेष्ठ हैं। इसलिए हम सबसे उत्तम हैं। ये लोक हमारे ही हैं। देवता और ब्राह्मण कोई चीज़ नहीं हैं।

यह सुन केशनी ने कहा कि कल सवेरे यहाँ सुधन्वा भी आवेगा। मेरी इच्छा है कि तुम दोनों कल सवेरे यहाँ आओ। तभी मैं तुम दोनों को देखूँगी। विरोचन ने कहा बहुत अच्छा, मैं और सुधन्वा कल सवेरे यहाँ आवेंगे।

हे राजन्, ! रात बीत जाने पर, जब सवेरा हुआ तब, सूर्य के उदय होते ही, सुधन्वा वहाँ आ गया। वहाँ पर केशिनी और विरोचन पहले ही से बैठे हुए थे। वहाँ पहुँच कर सुधन्वा ने उन दोनों से भेंट की। सुधन्वा ब्राह्मण था। उसे आया देख कर केशिनी ने उठ कर उसका स्वागत किया और बैठने को सुन्दर आसन दिया। उस आसन को लेकर और उस पर बैठ कर सुधन्वा ने विरोचन से कहा कि हे विरोचन, देख मैं उत्तम आसन पर बैठता हूँ। यद्यपि हमारा और तुम्हारा यहाँ आने का एक ही प्रयोजन है पर तोभी मैं तेरी बराबर, तेरे आसन पर, नहीं बैठ सकता।

यह जली कटी सुन कर विरोचन ने कहा कि हे सुधन्वा, तुम्हारे योग्य तो पटेरे का या काँस का आसन चाहिए। तुम मेरे साथ बैठने के योग्य भी तो नहीं हो।

सुधन्वा ने कहा पिता और पुत्र एक आसन पर बैठ सकते हैं; और दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय तथा दो वैश्य और दो शूद्र भी एक आसन पर बराबर बैठ सकते हैं, परन्तु कोई बे-मेल के दो मनुष्य एक आसन पर नहीं बैठ सकते।

देख, तेरा पिता मुझ से नीचे आसन पर बैठता है; तू मेरे सामने का छोकरा इन बातों को नहीं जानता !

इस पर विरोचन ने कहा कि हे ब्राह्मण ! हमारे पास बहुत सा धन-द्रव्य है। तुम उसकी शर्त लगा कर किसी तीसरे से यह पूछो कि हम तुम में कौन बड़ा है ?

यह सुन सुधन्वा ने कहा—हे विरोचन, सोना, घोड़ा आदि धन तुम्हारे ही रहें। उन की शर्त हम नहीं बदते। हाँ प्राणों की शर्त लगा कर पूछना चाहो तो पूछ सकते हो।

यह सुन विरोचन ने कहा कि अच्छा, यही सही; परन्तु प्राणों की बाज़ी लगा कर किसके पास चलना होगा ? देवताओं के और मनुष्यों के पास तो मैं कभी जाऊँगा नहीं। यह सुन सुधन्वा ने कहा कि और कहीं नहीं, प्राणों की शर्त लगा कर तेरे पिता के ही पास चलेंगे। मुझे विश्वास है, पुत्र के लिए तेरा पिता कभी झूँठ न बोलेगा।

हे धृतराष्ट्र, इस प्रकार प्राणों का प्रण लगा कर, क्रुद्ध हो, वे दोनों, विरोचन के पिता प्रह्लाद के पास

गये। उन्हें आते देख, प्रह्लाद ने अपने मन में कहा—ये तो कभी एक साथ नहीं चलते थे. पर आज दो विषधारी साँपों की तरह क्रुद्ध हुए एक मार्ग से ही चले आ रहे हैं! फिर उसने अपने पुत्र विरोचन से कहा कि, क्या तू ने सुधन्वा से अब मित्रता कर ली है जो इसके साथ विचरता है? क्योंकि पहले कभी तू इस तरह इसके साथ न रहता था। विरोचन ने कहा—सुधन्वा के साथ मेरी मित्रता नहीं है किन्तु इसके साथ प्राणों की शर्त है। इसलिए हे पिता, तुमसे एक बात पूछता हूँ, तुम सत्य सत्य कहना झूँठ न बोलना।

फिर प्रह्लाद ने सुधन्वा ब्राह्मण का ख़ूब अतिथि-सत्कार करना चाहा। पर सुधन्वा ने कहा—हमारा सत्कार तो हो लिया। अब तुम हमारी बात का सच सच जवाब दो। यह कहो कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या विरोचन?

अब प्रह्लाद घबरा गया। उसने कहा कि हे ब्राह्मण! मेरे यह एक ही पुत्र है और आप भी मेरे पास साक्षात् आये हैं। अब तुम दोनों के प्रश्न का मैं कैसे उत्तर दूँ?

सुधन्वा ने कहा कि हे प्रह्लाद, जो तुझे अपना पुत्र बहुत प्यारा है तो तू उसे गायें, अथवा जो कुछ और चीज़ें प्यारी हों दे दे और हम दोनों के विवाद में सच सच कह। प्रह्लाद ने कहा कि जो सच भी न कहे और झूँठ भी न कहे तो वह चुपचाप रहने वाला क्या फल पाता है? सुधन्वा ने कहा कि चुप रहने वाले को दुःख फल मिलता है। पति को छोड़ देने से जो दुःख स्त्री को होता है, जूए में हारने से पुरुष को जो दुःख होता है, अथवा बहुत भार से थके हुए मनुष्य को जो दुःख होता है वही दुःख उसे होता है।

जो झूँठी गवाही देता है वह नगर से बाहर रहे और वहाँ पड़ा हुआ शत्रुओं को देखता रहे। पशु के लिए झूँठ बोलने वाला पाँच प्राणियों का हत्यारा होता है। जो किसी प्राणी के लिए झूँठ बोलता है वह महापापी है। जो धन के लिए झूँठ बोलता है उसे भी बहुत पाप होता है। पृथ्वी के लिए झूँठ बोलने वाले को सब के मारने का पाप लगता है। इसलिए हे प्रह्लाद! तू पार्थिव शरीर के लिए झूँठ मत बोल।

प्रह्लाद बड़ा धर्मात्मा था। उस ने धर्म के सामने अपने पुत्र का ज़रा भी मोह न किया। उसने सच सच कह दिया कि हे पुत्र विरोचन, सुधन्वा का पिता अङ्गिरा मुझ से श्रेष्ठ है इसलिए सुधन्वा तुझ से श्रेष्ठ हुआ। तुम्हारी माता से इसकी माता श्रेष्ठ है। इसलिए हे पुत्र, सुधन्वा ने तुम को जीत लिया। अब यह तुम्हारे प्राणों का स्वामी है।

यह कह प्रह्लाद ने सुधन्वा से कहा कि हे सुधन्वा! मैं तुमसे दिया हुआ विरोचन फिर चाहता हूँ।

सुधन्वा ब्राह्मण बड़ा दयालु था। प्रह्लाद की सचाई पर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि हे प्रह्लाद! मैं तेरी सचाई से प्रसन्न हूँ। इसलिए इस दुर्लभ पुत्र को मैं तुझे देता हूँ। पर एक बात है। वह यह कि कुमारी केशिनी के सामने यह विरोचन मेरे पैर धोवे।

इतनी कथा सुनाकर विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन्! तुम भी भूमि के लिए झूँठ मत बोलो। पुत्र के लाभ के लिए झूँठ बोल कर तुम मन्त्री सहित अपना नाश मत करो।

हे राजन्! देवता लाठो लेकर किसी की रक्षा नहीं किया करते, किन्तु वे जिसकी रक्षा चाहते हैं उसकी बुद्धि शुद्ध कर देते हैं।

ज्यों ज्यों यह मनुष्य शुभ कामों में मन लगाता जाता है त्यों त्यों ही इसके सब काम सिद्ध होते चले जाते हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं।

मदिरा का पीना, लड़ाई करना, समाज से बैर, स्त्री-पुरुष में झगड़ा, कुटुम्ब का भेद, राजा से बैर और कुमार्ग, इन सबको छोड़ देना चाहिए।

अग्नि में सुवर्ण की परीक्षा होती है। आचरणों से श्रेष्ठ पुरुषों की, व्यवहार से साधु जन की, भय में शूर वीर की, कठिन कामों में धीर पुरुष की और विपत्काल में मित्र और शत्रु की परीक्षा होती है।

बुढ़ापा रूप को, आशा धीरज को, मृत्यु प्राणों को, निन्दा धर्म को, क्रोध लक्ष्मी को, नीच की टहल शील को, काम लज्जा को और अभिमान सब बातों को हर लेता है।

यह लक्ष्मी शुभ कामों से आती है, कड़ेपन से बढ़ती है, बड़ी चतुराई से ठहरती है और संयम से प्रतिष्ठा पाती है।

ये आगे लिखे हुए आठ गुण पुरुष को प्रसिद्ध कर देते हैं—१—बुद्धि. २—अच्छा कुल. ३—इन्द्रियों को वश में रखना, ४—पढ़ना, ५—पराक्रम, ६—समयानुसार थोड़ा बोलना, ७—शक्ति के अनुसार दान, ८—किये हुए उपकार का मानना। परन्तु हे राजन्! इन आठों गुणों की भी प्रतिष्ठा करने वाला एक और गुण है। वह 'मनुष्यों का आदर' है। इससे ही सारे गुणों की शोभा होती है।

यज्ञ करना, पढ़ना, दान, तप. सत्य, क्षमा, दया, लोभ न करना, ये आठ प्रकार के धर्म के मार्ग हैं। इन आठों में से पहले चारों को तो महा पाखण्डी पुरुष भी सेवन करते हैं पर पिछले चारों को महात्मा जन ही सेवन करते हैं।

वह सभा सभा ही नहीं जहाँ वृद्ध (विद्वान्) न हों; वे वृद्ध किसी काम के नहीं जो धर्म की बात न कहें; वह धर्म धर्म नहीं जिसमें सत्य न हो, और वह सत्य भी किसी काम का नहीं जिसमें छल भरा हो।

पाप करता हुआ, पाप कीर्त्ति वाला पुरुष पाप फल को भोगता है और पुण्य करता हुआ, पुण्य कीर्त्ति वाला पुण्य के फल को भोगता है।

इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह पाप कभी न करे। क्योंकि बार बार किया हुआ पाप बुद्धि को नष्ट कर डालता है। अर्थात् पाप करने से बुद्धि बिगड़ जाती है।

जब बुद्धि बिगड़ जाती है तब मनुष्य पाप ही किया करता है। और बार बार किया हुआ पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है। जब बुद्धि बढ़ जाती है तब वह नित्य पुण्य-कार्य्य ही करता है। पुण्यात्मा जन पुण्य फल पाता है। इसलिए मनुष्य को सदा पुण्य काम ही करने चाहिएँ।

जो इधर उधर एक दूसरे की बुराई करता है वह, और जो सब का जी दुखाने वाला है वह, निर्दयी, वैर करने वाला मूर्ख पापों का आचरण करता हुआ बहुत दिन तक दुःख भोगता है।

जो किसी की भी निन्दा नहीं करता, जो बुद्धिमान् है, जिसके आचरण पवित्र हैं, वह बड़े दुःखों को नहीं पाता। किन्तु वह सब जगह कीर्ति ही पाता है।

जो मनुष्य बुद्धि वालों के संग से बुद्धि प्राप्त करता है वही पण्डित है। पण्डित ही धर्म और अर्थ को जानकर सुखपूर्वक बढ़ सकता है।

मनुष्य को दिन से ही ऐसे काम करने चाहिएँ जिससे रात को दुःख न हो। आठ महीने में ऐसे काम करने चाहिएँ जिससे बरसात भर चैन से कटे।

पहली अवस्था में ऐसे काम करे जिससे बुढ़ापे में सुख हो। और सारी उम्र ऐसे काम करे जिससे मर कर सुख से रहे।

अधर्म से मिले हुए धन से ऐव नहीं छिपाये जा सकते। वह दूसरी जगह ज़रूर खुल ही जाते हैं।

मन जीतने वाले का शिक्षक गुरु है, दुष्ट मनुष्यों का शिक्षक राजा है और पापी पुरुषों का शिक्षक परमात्मा है।

हे राजन्! ब्राह्मणों का आदर सत्कार करने वाला, दान देने वाला और अपने कुटुम्ब का पालन करने वाला सुशील क्षत्रिय बहुत दिन तक पृथिवी को भोगता है।

इस सोने की फूल वाली पृथिवी से तीन ही पुरुष फल पाते हैं। पहला शूर, दूसरा विद्वान् और तीसरा अच्छी सेवा करने वाला।

हे राजन्! दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्ण के हाथ में राज्य देकर तुम किस तरह सुख

भोगना चाहते हो ? इन ऊपर कहे गये गुणों वाले तो पाण्डव हैं। वे तुममें पिता के समान भाव रखते हैं। हे राजन् ! तुम भी उनसे पुत्र-तुल्य बर्ताव रक्खो।

चौथा अध्याय।

विदुर जी ने कहा कि हे राजन्! इस विषय में एक इतिहास है। दत्तात्रेय और साध्यों का संवाद है। वह हमारा सुना हुआ है। हम उसे सुनाते हैं। सुनिए।

एक विचरते हुए परमहंस से साध्य देवों ने पूछा कि हे महर्षे ! हम सब साध्य देव हैं। हम आप में अनन्त ज्ञान देखते हैं। आप वेदज्ञ, बुद्धिमान् और धीर हैं। आप हमसे कोई पाण्डित्य-भरी उदार वाणी कहिए।

यह सुन परमहंस ने कहा कि हे देवो ! यह मेरा सुना हुआ है। तुम सब ऐसाही करो। धैर्य, मन की शान्ति, सत्य, और धर्म के पीछे चलना और मन की

गाँठ खोलकर दुख सुख को बराबर समझे। गाली देने वाले को कभी गाली न दे; क्योंकि सहने वाले का क्रोध ही गाली देने वाले को जलाता है और सहने वाले का पुण्य बढ़ता है।

किसी को गाली न देनी चाहिए। न किसी का अपमान करना चाहिए। मित्र से वैर न करे। नीच की सेवा न करे। अभिमान न करे। सदाचारी हो। रूखी और कठोर वाणी कभी नहीं बोलनी चाहिए। रूखी और कठोर वाणी मनुष्य के मर्मस्थलों, हड्डियों और हृदय को और प्राणों को जलाती है। इसलिए धर्मात्माओं को रूखी और कठोर वाणी सदा छोड़नी ही चाहिए।

मनुष्य चाहे सज्जन का संग करे, चाहे चोर का, चाहे तपस्वी का संग करे चाहे दुष्ट पुरुष का। ,बात यह है कि जो जैसे का सङ्ग करता है वह वैसा ही हो जाता है। कपड़े पर जैसा रङ्ग चढ़ाओ वही चढ़ जाता है।

वाद विवाद न करे, मारा हुआ भी दूसरे को न मारे, न दूसरे से मरवावे, जो पापी को भी मारना नहीं चाहता उसके संग की चाह देवता भी करते हैं।

झूँठ बोलने से न बोलना अच्छा, सत्य बोलना उससे भी अच्छा, प्रिय बोलना उससे भी अच्छा और धर्म युक्त बोलना सबसे अच्छा है।

मनुष्य जैसों के पास रहता है, जैसों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है वैसा ही हो जाता है।

जो सब की भलाई चाहता है, किसी की भी बुराई नहीं करता, सत्य बोलता है, कोमल स्वभाव रखता है और इन्द्रियों को वश में रखता है वह उत्तम पुरुष है।

जो व्यर्थ किसी को नहीं समझाता, प्रतिज्ञा के अनुसार काम करता है और पराये दोषों को जानता है वह मध्यम पुरुष है।

जो भलाई का उपदेश करने वाले का भी विश्वास नहीं करता, सदा मन में डरता ही रहता है और मित्रों को दूर कर देता है वह नीच पुरुष है।

जो अपना भला चाहे तो उत्तम जनों की सेवा करे और समय पड़े पर मध्यमों की भी सेवा कर ले, पर नीच पुरुष की सेवा कभी न करे।

यह सुन धृतराष्ट्र ने विदुर जी से अच्छे कुल की पहचान पूछी। विदुर जी ने कहा—

जिस कुल में तप, इन्द्रियदमन, वेद, धन, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान ; ये सात काम होते रहते हैं वह बड़ा कुल समझा जाता है।

जिस कुल के मनुष्य पवित्र आचरण करते हैं, जो प्रसन्न हो कर धर्म कर्म करते हैं, जो अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाना चाहते हैं और जो झूठ नहीं बोलते उनका कुल बड़ा कुल है।

यज्ञों के त्याग से, बुरे विवाहों से, वेद की जड़ उखाड़ने वाले काम करने से, और धर्म के उल्लंघन करने से कुल नष्ट हो जाता है।

देवधन के बिगाड़ने से, ब्राह्मण-धन के हर लेने से और ब्राह्मणों की आज्ञा का उल्लंघन करने से कुल नीच हो जाता है।

हे धृतराष्ट्र ! ब्राह्मणों के निरादर करने से और निन्दा करने से और किसी की धरोहर दबा लेने से कुल बिगड़ जाता है।

चाहे किसी कुल में गायें, मनुष्य और धन कितना ही क्यों न हो, पर यदि वह कुल आचरण-हीन है तो वह अच्छा कुल नहीं कहा जा सकता। चाहे कुल में थोड़ा ही धन हो, परन्तु यदि वह सदाचारी है तो वह बड़ा यशस्वी कुल है।

आचरण की बड़े यत्न से रक्षा करनी चाहिए। धन तो आने जाने वाला ही है। धन से हीन हीन नहीं होता, किन्तु जिसका आचरण नष्ट हो गया हो उसे नष्ट हुआ समझना चाहिए।

जिस कुल के आचार विचार नीच हों वह गायों से, घोड़ों से या और किन्हीं पशुओं से ऊँचा नहीं हो सकता।

बैठने के लिए आसन, ठहरने के लिए जगह, पीने के लिए पानी और प्यारी बात कहना, ये चार बातें अच्छे मनुष्यों के यहाँ सदा वर्तमान रहती हैं।

जिसको क्रोध का डर हो वह मित्र नहीं है और जिस से व्यवहार करने में शंका हो वह भी मित्र नहीं है। मित्र वही है जिस पर पिता की तरह पूरा विश्वास हो। बाक़ी सब मेलजोल वाले हैं।

जो बिना प्रयोजन, बिना किसी सम्बन्ध के मित्र भाव से बर्ताव करे तो वही मित्र है, वही बन्धु है, वही गति (सहारा) है और वही परायण है।

चञ्चल चित्त वाले, वृद्ध जनों की सेवा न करने वाले, डाँवाडोल बुद्धि वाले पुरुष की मित्रता स्थिर नहीं रहती।

बे मतलब क्रोध करना और बे मतलब प्रसन्न हो जाना, दुष्ट पुरुषों का लक्षण है। जैसे तितर बितर बादल।

चाहे धन हो या न हो पर मित्रों की ज़रूर ख़ातिर करनी चाहिए। क्योंकि ख़र्च किये बिना मित्रों की सार नहीं जानी जाती।

मन में सन्ताप करने से रूप, बल और ज्ञान नष्ट हो जाते हैं और रोग घेर लेता है।

हे राजन्! शोक करने से कुछ लाभ नहीं होता। उससे शरीर भी दुःखी हो जाता है और शत्रु प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए मन में कभी शोक को जगह नहीं देनी चाहिए।

सुख-दुख, जन्म-मृत्यु, लाभ-हानि, जीना-मरना, ये सब पारी पारी से मनुष्य को भोगने ही पड़ते हैं। इसलिए धीर पुरुष को हर्ष या शोक न करना चाहिए।

यह सुन धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, इस अग्नि तुल्य राजा युधिष्ठिर का मैंने अपमान किया है। इसलिए वह मेरे मूर्ख पुत्रों को ज़रूर मार डालेगा। इसी लिए मुझे और सबको चारों ओर डर ही डर

दिखाई देता है। मुझे कहीं भी शान्ति या सुख या निर्भयता नहीं नज़र आती। इसलिए आप कोई ऐसा स्थान बतावें जहाँ मुझे बिलकुल घबराहट न हो।

यह सुन विदुर जी ने कहा कि हे राजन्, विद्या और तप के बिना, इन्द्रियों को वशीभूत किये बिना और लोभ के त्यागे बिना, मुझे तुम्हारी शान्ति नहीं दिखाई देती।

अच्छी तरह पढ़ी हुई विद्या का, अच्छी तरह किये हुए युद्ध का, सुकर्म का और तप का अन्त में फल मिलता है।

हे धृतराष्ट्र, जिस तरह आग से जली हुई लकड़ियाँ अलग अलग—एक एक—हो कर धुआँ देती हैं, बलती नहीं, पर जब एक जगह, जोड़ कर, रख दी जाती हैं तब वे धुआँ नहीं देतीं बल्कि बलने लगती हैं। इसी तरह मनुष्यों में भाई बंधु का हाल है।

हे राजन्, जो नीच पुरुष गायों पर, स्त्रियों पर और ब्राह्मणों पर शूरवीरता दिखाते हैं वे ऐसे पतित हो जाते हैं जैसे वृक्ष के पके फल।

अकेला वृक्ष चाहे कितना ही बलवान् क्यों न हो उसे वायु उखाड़ ही डालता है। परन्तु बहुत वृक्ष

जो परस्पर सटे हुए रहते हैं, मिले जुले रहते हैं, वायु के महावेग को भी सह सकते हैं। उन्हें वायु नहीं उखाड़ सकता।

इसी प्रकार मनुष्यों का हाल है। एक मनुष्य को, चाहे वह कितना ही बलवान् क्यों न हो, शत्रु जीत सकते हैं; वह शत्रु से हार सकता है। परन्तु यदि बहुत से मनुष्य मिल कर रहें तो उनको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता। एक दूसरे का सहारा पाकर ही कुटुम्बी जन, जलाशय में कमलों की तरह बढ़ते हैं।

हे राजन्, धनी होने के बराबर कोई गुण नहीं माना जा सकता। क्योंकि धनी पुरुष कभी दीन नहीं होता। परन्तु जो धनी नहीं हैं वे रोगी हैं। उन्हें मरे बराबर समझना चाहिए।

जो बिना रोग के ही पैदा होता है, जो कड़ुवा है, जो सिर में रोग पैदा कर देता है, जिसके वश में होना पाप है, जो बड़ा तीखा है, जो बड़ा तीव्र है, जो बहुत ही गरम है, जिसे सज्जन पी सकते हैं, जिस के पीने की ताक़त दुर्जनों में नहीं होती, हे राजन्, उस "क्रोध" को तुम पीओ और फिर शान्त हो।

रोगीजन सदा दुःखी ही रहा करते हैं। उन्हें न फल अच्छे लगते, न इन्द्रियों का कोई सुख मिलता, न धन का भोग होता और न वे सुख को जानते हैं।

हे राजन्, मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि जुए में जीती हुई द्रौपदी को देख कर तुम दुर्योधन को रोको, उसे समझाओ। पर तुमने हमारी एक न सुनी। हे राजन्, पण्डित जन जुए को (छल को) अच्छा नहीं समझते।

वह बल बल नहीं है जो ग़रीबों पर, दुर्बलों पर चलाया जाय। धन की गति बड़ी सूक्ष्म है। उसे जल्द सेवन करना चाहिए। दुर्जन की कमाई हुई लक्ष्मी नष्ट हो जाती है और सज्जन तथा कोमल पुरुष की कमाई हुई लक्ष्मी को उसके बेटे पोते भी भोगते हैं। उसकी लक्ष्मी बहुत समय तक स्थिर रहती है।

हे राजन्! जो तुम्हारे पुत्र पाण्डुपुत्रों की और पाण्डुपुत्र तुम्हारे पुत्रों की रक्षा करें—आपस में मिल जुल कर रहें—वे सब मिल कर शत्रु मित्र के समान समझें और समान ही काम करें तो वे सुखी हों; तभी वे फूलें फलें और तभी वे जीवित रह सकते हैं।

हे धृतराष्ट्र ! तुम इस कौरवकुल को मेंड़ हो। इसके आधारस्तम्भ तुम्ही हो। यह कुल तुम्हारे ही अधीन है। इसलिए वन में दुःख पाते हुए बालक पाण्डवों को तुम रक्षा करो। इसी से तुम्हारा यश बढ़ेगा। हे राजेन्द्र ! तुम पाण्डवों से मेल करलो। तुम शत्रुओं को अवसर मत दो। देखो पाण्डव सत्य पर स्थिर हैं। तुम अपने दुर्योधन को संभाल कर रक्खो।

पाँचवाँ अध्याय।

विदुर जी ने कहा—हे राजन्, महात्मा मनु ने इन आगे कहे हुए १७ प्रकार के मनुष्यों को आकाश में घूँसे मारने वाला कहा है। वे ये हैं—

१—शिक्षा न देने योग्य को शिष्य बनाने वाला।

२—कुसमय, बे-मौक़े, प्रसन्न होने वाला।

३—शत्रु की सेवा करने वाला।

४—स्त्रियों की रक्षा करके सुख भोगने वाला।

५—न माँगने योग्य से माँगने वाला।

६—या उस अयोग्य की बड़ाई करने वाला।

७—कुलीन होकर कुकर्म करने वाला।

८—निर्बल होकर बलवानों से बैर लगानेवाला।

९—अश्रद्धालुओं को उपदेश देनेवाला।

१०—न चाहते हुए को चाहने वाला।

११—पुत्र-बधू से हँसी ठट्ठा करने वाला।

१२—पुत्र-बधू के साथ रह कर प्रतिष्ठा चाहने वाला।

१३—पराये खेत में बीज बोने वाला।

१४—कुसमय, विपत्काल में, स्त्री का अपमान करने वाला।

१५—लेकर इन्कार करने वाला।

१६—दान करके अपनी बड़ाई आप करनेवाला।

१७—अनहोनी को होनी मानने वाला।

इन सब मनुष्यों को यमदूत नरक में ले जाते हैं।

हे राजन्! यह नीति है कि जैसे के साथ तैसा बर्ताव करना चाहिए। छलिया के साथ छल का और साधु के साथ साधुता का बर्ताव करना चाहिए।

बुढ़ापा रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, चुग़ली करना धर्माचरण को, काम लज्जा को, नीच की सेवा शील को, क्रोध शोभा या लक्ष्मी को, हर

लेता है। और अभिमान सबही को हर लेता है। अभिमान करना बहुत ही बुरा है।

जब विदुर जी इतना उपदेश कर चुके तब धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर! जब वेदों में मनुष्य की आयु १२० वर्ष की लिखी है तब वह अपनी पूरी आयु क्यों नहीं पाता? वह बीच में क्यों मर जाता है?

विदुर ने कहा—अत्यन्त घमंड करना, अत्यन्त बोलना, दान न देना, क्रोध करना, अपने ही पेट भरने की इच्छा करना, और मित्रों से द्वेष रखना; ये छः बातें तेज़ तलवार हैं। ये प्राणियों की आयु को काटा करती हैं। मृत्यु कुछ भी नहीं करता; बल्कि ये छः ही मनुष्य को मारती हैं।

हे राजन्, जो मनुष्य विद्वान् हो, शिक्षित हो, नीति का जानने वाला हो, पाँचों यज्ञ करके भोजन करता हो, किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाता हो, कभी कोई अनर्थ न करता हो, किये हुए उपकार का मानने वाला हो, सत्यवादी हो और कोमल हो, वह स्वर्ग पाता है।

हे राजन्, मीठा बोलने वाले, ख़ुशामदी मनुष्य तो बहुत मिलते हैं; परन्तु कड़वी, पर हितकारक, बात के कहने और सुनने वाले दुर्लभ हैं।

धर्म का सहारा लेकर स्वामी के प्रिय अप्रिय की कुछ परवा न करके जो कड़वे, पर हितकारक, वचन कहता है वही अपने स्वामी या राजा का सच्चा सहायक है।

कुल के लिए एक पुरुष को छोड़ दे, गाँव के लिए कुल को छोड़ दे, जनपद—राष्ट्र—प्रान्त—के लिए गाँव को छोड़ दे और अपने लिए सारी पृथ्वी को छोड़ दे। अर्थात् अपनी आत्मा सबसे बड़ी और प्यारी वस्तु है। इसकी ख़ूब रक्षा रखनी चाहिए।

आपत्काल के लिए धन का संचय और रक्षण करना चाहिए। धन से भी ज़ियादा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए और धन से और स्त्रियों से भी अधिक और पहले अपनी रक्षा करनी चाहिए।

इस जुए से पहले भी मनुष्यों में वैर होता देखा गया है। इसलिए बुद्धिमान् हँसी के लिए भी जुआ न खेले। हे राजन्, जब जुआ हुआ था तब भी मैंने जुए के विरुद्ध बात कही थी। मैंने पहले ही कहा था कि यह उचित नहीं है। परन्तु वह मेरा कहना तुम्हें उस समय ऐसा बुरा लगा जैसा रोगी को पथ्य औषध।

हे राजन्, तुम मयूर-पंखों के समान उत्तम गुणी पाण्डवों को अपने काकसमान निर्गुणी पुत्रों से पराजय करना चाहते हो। ऐसा करने से तुम सिंहों को छोड़ गीदड़ों की रक्षा करने वाले होगे। समय आने पर, याद रखना, तुम्हें शोक करना पड़ेगा।

जो मनुष्य अपने हितकारी भक्त या नौकर पर क्रोध नहीं करता, उस स्वामी पर वे लोग बड़ा विश्वास करने लगते हैं। वे उसे आपत्काल में भी नहीं छोड़ते।

जो सेवक अपने स्वामी के मन की बात जान कर आलस्य छोड़ कर सब काम करता है और सदा हित ही करता है वही सच्चा सेवक दयापात्र है।

जो सेवक अपने स्वामी की सिखवन का ज़रा भी आदर नहीं करता, और जो उसे आज्ञा दी जाय तो उत्तर देने लगे, बुद्धि का अभिमानी हो, विरुद्ध बोलने वाला हो, तो ऐसा सेवक नहीं रखना चाहिए। उसे निकाल देना चाहिए।

राजा के दूत में ये आठ गुण होने चाहिएँ— ढीठ न हो, नपुंसक न हो, सुस्त न हो, दयावान् हो, ख़ूब चिकनी चुपड़ी बातें बनानी जानता हो,

जिसे शत्रु न तोड़ सके, जिस की जाति में कोई रोग न हो, बोलने में चतुर हो।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि विश्वास में आ कर कभी शत्रु के घर न जाय। बे-मौक़े चौराहे पर छिप कर न रहना चाहिए।

सलाही के बहकाने में न आवे। जो सलाही पुरुष पहले सलाह में रहा हो और फिर अलग हो गया हो तो उससे यह भी न कहना चाहिए कि "तुझ पर हम भरोसा नहीं करते" किन्तु उसके साथ किसी कारण का बहाना कर देना चाहिए।

नीचे लिखे हुए मनुष्यों के साथ कोई व्यवहार न करना चाहिए:—

जिसे दया बहुत हो, जो राजा हो, वेश्या, राज-कर्मचारी, पुत्र, भाई, जिसका पुत्र बालक हो ऐसी विधवा स्त्री, सैनिक, जिसको सम्पत्ति छीन ली गई हो। बात यह है कि इनके साथ व्यवहार करने से कुछ न कुछ बखेड़ा या किसी प्रकार की गड़बड़ होनी सम्भव है।

अच्छी बुद्धि, अच्छा कुल शास्त्रों का पढ़ना सुनना, इन्द्रियों का रोकना, पराक्रम, बहुत न बोलना,

अपनी शक्ति के अनुसार दान, और कृतज्ञता; ये आठ गुण मनुष्य को कीर्तिमान् कर देते हैं। अर्थात् कीर्ति चाहने वाले को ये गुण अवश्य सीखने चाहिएँ। हे राजन्, इन आठों गुणों को एक गुण दवा लेता है। अर्थात् इन सबसे बढ़िया एक और गुण है। वह मनुष्यों का आदर करना है। इस आदर गुण में सारे गुण छिपे हुए हैं।

जो मनुष्य परिमित (नाप तोल कर) भोजन करता है उसको छः बातों का लाभ होता है। वे छः बातें ये हैं, १—शरीर का नीरोग रहना, २—आयु की बढ़ती, ३—बल, ४—सुख, ५—सन्तान का अच्छा होना, और ६—लोग उस की प्रशंसा करते हैं।

निकम्मे को, बहुत खाने वाले को, बहुत शत्रु वाले को, छलिया को, और निकम्मे और भद्दे वेष के न जानने वाले को, और निकम्मे और भद्दे वेष धारण करने वाले को मनुष्य कभी अपने घर में न टिकावे।

जो महाकृपण हो, जिसका गाली देने का स्वभाव हो, जो कुपढ़ हो, जङ्गली हो, धूर्त हो,

अमान्य का मान करने वाला हो, निर्दयी हो, वैरी हो, कृतघ्न हो; उनसे कभी नहीं माँगना चाहिए; चाहे कितना ही दुःख क्यों न हो।

गृहस्थ को चाहिए कि जब उसके सन्तान हो जाय और गृहस्थ-ऋण चुक जाय, जब उसके पुत्र को जीविका का प्रबन्ध हो जाय, और जब कन्याओं को अच्छे कुल में ब्याह दे, तब वह मुनिवृत्ति को धारण करके वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे।

मनुष्य जो जो काम प्राणियों के हित के लिए और अपने सुख के लिए करना चाहे वह वह सब ईश्वर के भरोसे होकर करे। यही सब अर्थों की सिद्धि का मूल है। ईश्वर पर भरोसा रखना बड़ा उत्तम है।

जिस के पास बुद्धि हो, प्रभाव हो, तेज हो, बल हो, फुरती हो और हिम्मत हो, तो उसे जीविका न होने का भय कैसा? अर्थात् उसे जीविका की कभी चिन्ता ही नहीं करनी पड़ती।

हे राजा धृतराष्ट्र, पाण्डवों के साथ वैर करने में, लड़ाई करने में इतने दुःख हैं:—

देवताओं को दुःख; पुत्रों से वैर, नित्य घबराहट, यश का नाश, शत्रुओं का आनन्द।

हे राजन्, हे इन्द्र के समान पराक्रम वाले राजन्, भीष्म का कोप, तुम्हारा कोप, द्रोण का कोप और राजा युधिष्ठिर का कोप इस सारे संसार को उथल पुथल कर डालेगा—जैसे आकाश में तिरछा पड़ता हुआ श्वेत ग्रह। इसलिए तुम ऐसा काम करो जिससे तुम्हारे १०० पुत्र, कर्ण, और पाँचों पाण्डव सुखपूर्वक इस पृथिवी का राज्य करें।

हे राजन्, तुम्हारे पुत्र वन हैं और पाण्डव सिंह। तुम सिंहसहित वन की रक्षा करो। उस वन से सिंहों को और सिंह से वन को मत काटो। ऐसा करो जिससे ये सब बने रहें। देखो, वन के बिना सिंह नहीं रह सकते और सिंहों के बिना वन भी किसी काम का नहीं, फिर वह भी नहीं रह सकता। ये दोनों परस्पर रक्षा करते हैं।

जो मनुष्य बहुत बड़ी सिद्धि चाहे तो वह सदा धर्म ही करे। धर्म और अर्थ का ऐसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा स्वर्ग और अमृत का।

जिस का मन पाप से हट गया हो और धर्म में लग गया हो, मानो उसने सब कुछ समझ लिया। वही तत्त्वदर्शी है।

जो धर्म के समय में धर्म, अर्थ के समय में अर्थ और काम के समय में काम का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक दोनों लोकों में सुख पाता है। अर्थात् समयानुसार ही काम करना चाहिए।

हे राजन्, जो क्रोध और हर्ष के उठते हुए वेग को रोक लेता है और जो आपत्तियों में नहीं घबराता, वह लक्ष्मी का पात्र बनता है।

यह चार प्रकार का बल है:—

१—अपनी भुजाओं का बल।

२—उत्तम पुरुषों की सलाहों का बल।

३—धन का बल।

४—और बाप दादों से चला आया कुल सम्बन्धी बल।

परन्तु इन चारों बलों में सबसे श्रेष्ठ बल एक पाँचवाँ बल है। वह 'बुद्धिबल' है।

हे राजन्, ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो स्त्री का, राजा का, सर्प का, स्वाध्याय (वेदपाठ) का, प्रभु (स्वामी) का, शत्रु का, भोग का और आयु का विश्वास कर सके? कोई नहीं। क्योंकि इनसे ज़रा भी मन हटाने से ये बिगड़ सकते हैं।

बुद्धिरूप बाण से मारे हुए प्राणी की कोई दवा नहीं है। उसके लिए न कोई वैद्य है न मंत्र, उसके लिए न शान्तिपाठ काम दे सकते हैं न अथर्व के तन्त्र।

साँप का, आग का, सिंह का और कुलीन पुत्र का कभी निरादर या तिरस्कार नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये बड़े तेजस्वी होते हैं। ये तिरस्कार करने वाले का सर्वनाश कर सकते हैं।

महातेजस्वी अग्नि छिपा हुआ सारे काष्ठों में रहता है। पर तब तक उस काष्ठ को भस्म नहीं करता जब तक उसे कोई सुलगाये नहीं। तात्पर्य यह कि तेजस्वी लोग आप किसी को कुछ नहीं कहते पर जब कोई छेड़ता है तब वे उसकी ख़ूब ख़बर लेते हैं।

हे राजन्, तुम पुत्रों सहित लता के समान हो और पाण्डव शालवृक्ष के समान हैं। भला कहीं बिना वृक्ष के आश्रय के कोई लता खड़ी रह सकती है? नहीं, कभी नहीं।

हे राजन्, तुम अपने पुत्रों को वन समझो और पाण्डवों को सिंह। तुम ख़ूब समझ रक्खो कि वन के बिना सिंह नहीं रह सकते और सिंह के बिना वन।

छठा अध्याय ।

हे राजन्, यह स्वाभाविक बात है कि जब वृद्ध पुरुष आता है तब युवा पुरुष के प्राण ऊपर को उठ कर उछलने लगते हैं। वे प्रत्युत्थान—ताज़ीम—और अभिवादन करने से फिर अपने स्थान पर आ जाते हैं।

धीर पुरुष को उचित है कि वह अभ्यागत साधु को आसन दे, जल दे, पाँव धुलावे, कुशल पूँछ कर मन की अवस्था पूँछे और फिर आदरपूर्वक भोजन दे।

भिक्षुक वह है कि जो क्रोध को त्यागे, ढेले और सोने को बराबर समझे, शोकहीन हो, मेल और लड़ाई झगड़े से अलग रहे, निन्दा और बड़ाई से कुछ मतलब न रक्खे और प्यारे और बे-प्यारे का मन में ज़रा भी भाव न रक्खे। मतलब यह कि उदासीन रहे।

बुद्धिमान् को मार कर, उसे सता कर, मनुष्य यह न समझे कि मैं उससे दूर हूँ। नहीं, बुद्धिमान्

की भुजायें बहुत लंबी होती हैं। वह सताया हुआ दूर से ही मारने वाले को मार डालता है।

विश्वास न करने योग्य का विश्वास न करे और विश्वासयोग्य का बहुत ज़्यादा विश्वास न करे। क्योंकि विश्वास करके पैदा हुआ डर जड़ को भी काट कर फेंक देता है।

मनुष्य को चाहिए कि कभी किसी के साथ डाह न करे, स्त्री की रक्षा करे, बाँट कर खावे, प्यारा बोले, नरमाई से रहे, मधुर वचन बोले और स्त्रियों के वश में कभी न हो।

स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी हैं, इसलिए वे सत्कार-योग्य हैं। वे बड़भागिनी हैं। वे पुण्य और घर का उजाला हैं। इसलिए उनकी विशेष रक्षा करनी चाहिए।

चाहे पिता को रनवास में जाने दे, रसोई बनाने के लिए चाहे माता को रसोई-घर में जाने दे, चाहे गायों में अपने तुल्य किसी को भेज दे, परन्तु खेती करने को तो अपने आप ही जाना चाहिए। खेती का काम दूसरों के भरोसे कभी न छोड़ना चाहिए।

क्षमाशील सज्जन काष्ठ में अग्नि की तरह छिपे हुए रहते हैं। उनके हृदय के गुप्त भेद को, उनके भाव को, कोई नहीं जान सकता।

चारों ओर की ख़बर रखने वाला राजा बहुत दिन तक राज्य भोगता है। अपने धर्म, अर्थ आदि के कामों को करने से पहले न कहदे। अपनी सलाह को गुप्त रहने दे। पर्वत पर चढ़ कर या महल में, एकान्त में, जंगल में, सलाह करनी चाहिए। जो मित्र नहीं वे सलाह लेने के योग्य भी नहीं हैं।

मूर्ख हो या पण्डित, पर जिसने अपना मन न जीता हो ऐसे को राजा अपना मित्र न बनावे। अच्छे मित्र से ही धन मिलता है और सलाह गुप्त रहती है। जिसके कामों को काम हो जाने बाद लोग जानते हैं वह राजा उत्तम है। ऐसे राजा को अवश्य सिद्धि होती है। जो मनुष्य बुरे काम किया करता है वह कामों के नाश से अपना भी नाश कर डालता है। अच्छे अच्छे कामों का करना सुख का कारण होता है और उनका न करना पछतावे का।

जिस राजा के क्रोध और प्रसाद व्यर्थ न हों, जो स्वयं भ्रमण करके देखे और ख़ज़ाने के काम में अपना

ही विश्वास रक्खे उसको पृथिवी धन देने वाली होती है।

ब्राह्मण को ब्राह्मण ही जानता है; स्त्री को पुरुष ही जानता है; मन्त्री को राजा ही पहचानता है, और राजा को दूसरा राजा ही जानता है। और कोई नहीं जान सकता।

जो शत्रु मार डालने योग्य हो और अपने वश में आगया हो, उसे छोड़ना न चाहिए। या उसे घेरे रहे या उसे मार डाले। क्योंकि उसके न मारने से जल्द भय आ जाता है।

देवता, ब्राह्मण, राजा, बालक, बूढ़े और रोगियों पर क्रोध न करना चाहिए। और यदि क्रोध आ भी जाय तो उसे रोकना चाहिए।

वैर किसी से नहीं करना चाहिए। वैर न करने से दोनों लोकों में कीर्ति मिलती है।

बुद्धि का मतलब यही नहीं है कि उससे केवल धन ही कमाया जाय। मूर्खता का केवल दरिद्रता ही मतलब नहीं है। किन्तु संसार के फेर फार को विद्वान् ही जानते हैं। मूर्ख नहीं।

हे राजन्, मूर्ख मनुष्य सदा सबकी निन्दा ही किया करते हैं। चाहे कोई विद्या में, शील में,

उम्र में, बुद्धि में, धन में, और कुलीनता में उससे बड़ा ही क्यों न हो, वह सदा सबकी निन्दा ही किया करता है।

दुराचारी, मूर्ख, चुग़लख़ोर, अधर्मी, कड़वी बात कहने वाला और क्रोधी मनुष्य सदा अनर्थों से घिरा रहता है। उसे कभी सुख नहीं मिलता।

व्यर्थ बकवाद न करना, दान देना, समय को व्यर्थ न बिताना, वाणी को वश में रखना ये काम मनुष्य को सुकर्म में लगाते हैं। इनसे मनुष्य को सुख मिलता है।

व्यर्थ बकवाद न करने वाला, चतुर, किये हुए उपकार को मानने वाला, बुद्धिमान् और सरल मनुष्य चाहे निर्धन भी हो, पर तो भी वह दुःख से तर जाता है; तो भी उसे दुःख नहीं घेरते।

जिस तरह समिधाओं से अग्नि बढ़ता है, इसी तरह लक्ष्मी भी बढ़ती है। लक्ष्मी के बढ़ाने वाली समिधा ये हैं:—

१ धैर्य, २ शान्ति, ३ इन्द्रियों का वश में रखना, ४ पवित्र रहना, ५ दया, ६ कोमल वाणी, ७ मित्रों से द्रोह न करना।

प्रजा को चाहिए कि ऐसे राजा को त्याग दे जो बाँट कर न खाता हो, जो दुरात्मा, पापी हो; जो कृतघ्नी हो, और निर्दय हो।

जो मनुष्य स्वयं दोषी होने पर भी अपने किसी निर्दोषी जन को दोष लगा कर क्रुद्ध करता है वह रात भर सुख से नहीं सोता। उसे रात दिन नींद नहीं आती। वह सदा ऐसा भयभीत रहता है जैसे साँपवाले घर में मनुष्य।

जिन मनुष्यों के बिगड़ने से, रुष्ट होने से, सुख-चैन में गड़बड़ होती हो, शान्ति-भङ्ग होती हो, ऐसे मनुष्यों को कभी अप्रसन्न नहीं होने देना चाहिए। उन्हें सदा प्रसन्न ही रखना चाहिए।

जो धन स्त्रियों के हाथ में है, या प्रमत्तों के हाथ में है, या नीच, बेवक़ूफ़ों के हाथ में है वह सब संशय में है। उसका कुछ भरोसा नहीं। क्योंकि मूर्खता से इन लोगों के पास से धन जल्द नष्ट हो जाता है।

जिस मनुष्य की कपटी जन प्रशंसा करते हों, जिसकी भाँड़ लोग तारीफ़ करते हों, और जिसकी वेश्यायें बेहद तारीफ़ करती हों, उसे मरा हुआ समझना चाहिए। वह जीता नहीं।

हे धृतराष्ट्र, तुमने महाबली पाण्डवों को छोड़ कर भारत का भारी राज्य इस दुर्योधन पर रक्खा। यह अच्छा नहीं किया। इसलिए इस राज्य से गिरते हुए दुर्योधन को तुम जल्द देखोगे। जिस तरह त्रिलोकी के राज्य से बलि भ्रष्ट किया गया था इसी तरह तुम्हारा पुत्र भी इस राज्य से गिराया जायगा।

सातवाँ अध्याय

इतना सुन कर धृतराष्ट्र ने कहा कि हे विदुर, यह मनुष्य हानि-लाभ में पराधीन है, परतन्त्र है। इसे विधाता ने दैव के अधीन रक्खा है। जैसे धागे में बँधी हुई कठपुतली। इसलिए तुम कहो। मैं कान लगा कर सुनता हूँ।

यह सुन विदुर ने नीति का उपदेश करना शुरू किया। उन्होंनें कहा—जो मनुष्य समय के विरुद्ध बोलता है, बे-मौक़े बात कहता है, वह चाहे बुद्धि में बृहस्पति ही के बराबर क्यों न हो पर तो भी उसका अपमान होता।

कोई देने से प्यारा बन जाता है, कोई प्यारी और मीठी वाणी बोलने से प्यारा बन जाता है, पर जो सलाह से प्यारा बनता है अर्थात् जो प्यारी सलाह देता है, वही प्यारा है। वही हितकारी है।

साधुजनों से, बुद्धिमानों से और पण्डितों से कभी द्वेष नहीं करना चाहिए। अच्छे कामों से प्रीति और बुरों से द्वेष करना चाहिए।

हे राजन्! मैंने दुर्योधन के पैदा होते ही तुमसे कहा था कि तुम इसे त्याग दो। इसके त्यागने से तुम्हारे सौ पुत्रों की वृद्धि होगी और न त्यागने से सौ पुत्रों का नाश।

हे राजन्! कोई धन में बड़े होते हैं, कोई गुण में। पर तुम उन धन में बड़ों को त्याग दो जो गुणहीन हैं।

जब धृतराष्ट्र ने देखा कि विदुर अभी तक चाहते हैं कि मैं दुर्योधन को त्याग दूँ और इसके लिए ये उपदेश कर रहे हैं, तब वह विदुर जी से कहने लगे कि हे विदुर, तुम्हारा कहना यथार्थ है। तुम्हारा उपदेश सुखदायक है। तुम्हारा कथन

विद्वानों के सम्मत है। और यह भी मैं जानता हूँ कि जिधर धर्म होता है जय उधर ही होती है। पर क्या करूँ, मोह बड़ा बलवान् है। मैं पुत्र को छोड़ना नहीं चाहता।

विदुर जी ने फिर नीति का उपदेश देना शुरू किया। उन्होंने कहा—जिन मनुष्यों में विनय होती है, जो नम्रताशील हैं, जो गुणी हैं, वे किसी के थोड़े से भी नाश को नहीं देख सकते। वे सदा दोनों की रक्षा ही किया करते हैं।

जो मनुष्य उद्धतस्वभाव वाले हैं वे सदा पराई निन्दा में तत्पर रहते हैं। वे रात दिन दूसरों की बुराई ही किया करते हैं। वे दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिए और आपस में विरोध पैदा करने के लिए सदा उद्योग किया करते हैं। हे राजन्! ऐसे दुर्जनों के दर्शनों में, उनके साथ रहने में, उनके साथ किसी तरह का व्यवहार करने में, किसी तरह का लेन देन करने में बड़ा भय है, बड़ा दोष है। जो लड़ाने का स्वभाव रखते हैं, जो कामी हैं, निर्लज्ज हैं, मूर्ख हैं, पापी हैं, वे पास बैठाने के भी योग्य नहीं हैं। उनके पास भी नहीं बैठना चाहिए।

हे राजन्! जो पुरुष दरिद्र, दीन, दुखी, भाई बन्धु पर दया करता है, वह सदा सुख भोगता है। जो अपना भला चाहते हैं उन्हें अपने भाई-बन्धुओं का रक्षण-पालन करना चाहिए। भाई-बन्धुओं के बढ़ने से मनुष्य की वृद्धि होती है। इसी तरह आप भी अपने कुल की वृद्धि करें। जब आप अपने भाइयों का सत्कार करेंगे तभी आप को सुख चैन होगा।

हे राजन्, अपने भाई चाहे कैसे ही गुणहीन हों तो भी उनका आदर सत्कार करना ही चाहिए। फिर ये पाण्डव तो गुणवान् हैं। ये तो तुम्हारी प्रसन्नता चाहते रहते हैं। इनका तो तुम्हें ज़रूर आदर करना चाहिए। हे राजन्, तुम वीर पाण्डवों पर प्रसन्न हो जाओ। उन्हें भी उनकी जीविका के लिए कुछ ग्रास दे दो।

हे प्रभु, पाण्डवों का सत्कार करने से लोक में आपका यश होगा। आप वृद्ध हैं, इसलिए आप अपने पुत्रों को समझाइए। मुझे भी आपकी भलाई में सुख है। आप मुझे अपना हितकारी समझें।

भला चाहने वालों को अपने भाइयों से विरोध नहीं करना चाहिए। उनसे मेल रखने में ही सुख है। भाइयों के साथ सदा प्रीति से भोजन करना चाहिए, बात चीत करना चाहिए। परस्पर विरोध करना अच्छा नहीं है। इस संसार में भाई ही तिराते और वेही डुबोते हैं। सदाचारी भाई तिराते हैं और दुराचारी डुबोते हैं। हे राजन्! तुम पाण्डवों के साथ मेल कर लो। उनसे मिल जाने पर तुम कभी शत्रुओं से न दबाये जा सकोगे। हे राजन्! तुम अच्छी तरह विचार लो। तुमको पाण्डवों के मर जाने पर और अपने पुत्रों के मारे जाने पर बराबर दुःख होगा। फिर पीछे पछताओगे। जीवन का कुछ भरोसा नहीं है। इसलिए जिस काम से पीछे दुःख निकलने की सम्भावना हो उसे पहले ही से छोड़ देना चाहिए।

हे राजन्! ख़ैर अब तक दुर्योधन ने जो किया सो किया, पर अब तुम कुल में बड़े हो, इस लिए अपने पुत्र को समझा लो। हे राजन्! पाडवों का उचित आदर करने से, उनको न्यायपूर्वक अधिकार देने से, तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी; विद्वान् लोग तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करेंगे।

जो मनुष्य बुद्धिमानों के वचनों पर विचार करते हैं, उनके मतानुसार काम करते हैं, वे बहुत दिन तक यश पाते हैं।

बुद्धिमानों का वह उपदेश भी व्यर्थही समझना चाहिए जो समझा न जाय या समझ कर तदनुकूल बर्ताव न किया जाय।

बृहस्पति के समान बुद्धिमान् जन भी बिना वृद्धों की सेवा के धर्म, अर्थ को नहीं जान सकता। समुद्र में गिरी हुई चीज़ नष्ट हो जाती है, फिर नहीं मिलती; न सुनने वाले के लिए कुछ कहना व्यर्थ है, मूर्ख के लिए शास्त्र व्यर्थ है और भस्म में होम व्यर्थ है।

नम्रता से बुराई दूर हो जाती है। पराक्रम से दरिद्रता दूर हो जाती है। क्षमा से क्रोध दूर हो जाता है और सदाचार से समस्त बुरे लक्षण दूर हो जाते हैं।

भोग्य वस्तुओं से, उसकी उत्पत्ति की जगह से, स्थान से, सेवा से, भोजन से और कपड़ों से कुल की पहचान करनी चाहिए। इन बातों से कुल की पहचान हो जाती है।

विद्वानों के सेवकों को, वैद्यों को, धार्मिक को, सुरूप को, जिसके बहुत से मित्र हों उसको और

मीठे श्रौर हित के वचन बोलने वाले मित्र को अच्छी तरह निबाहना चाहिए। इनसे कभी बिगाड़ना न चाहिए।

मनुष्य चाहे कैसे ही कुल में पैदा हुआ हो पर तो भी उसे मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। सबको धर्म की रक्षा करना चाहिए। सबको कोमल श्रौर नम्र स्वभाव रखना चाहिए। सबको लज्जा-शील होना चाहिए। ऐसा मनुष्य सौ कुलीनों से भी अच्छा होता है।

मित्रता उन्हीं की ठीक श्रौर बहुत दिन तक ठहरती है जिनकी बुद्धि, सलाह श्रौर मन मिलते हों। जिनके मन आपस में नहीं मिलते, जिन की बुद्धि समान नहीं श्रौर जिन का मन नहीं मिलता उनकी मित्रता नहीं निभती। ऐसी मित्रता में कुछ सुख नहीं। दुर्बुद्धि से श्रौर बे-समझ पुरुष से बुद्धिमान् मनुष्य को बचा रहना चाहिए। वे ऐसे हैं जैसे काँटों से ढका हुआ कुँआ।

जो घमण्डी हैं, जो मूर्ख हैं, जो रुलाने वाले हैं अर्थात् बिना कारण किसी को रुला देते हैं, जो काम को बहुत जल्दी से करते हैं, जो विचार कर

नहीं करते, तथा जो अधर्मी हैं, उनसे सदा बचा रहना चाहिए। उनसे कभी मित्रता नहीं करनी चाहिए।

मित्र ऐसा चाहिए जो किये हुए उपकार को मानने वाला हो, धर्मात्मा हो, सच्चा हो, गम्भीर हो, जिसका दृढ़ प्रेम हो, जो जितेन्द्रिय हो, जो अपनी अवस्था के अनुसार चाल चालन रखता हो, और जो मित्रता का प्रेमी हो।

इन्द्रियों का अपना अपना काम न करना मृत्यु से भी बढ़कर है। पर उसका वेहद बर्त्ताव देवताओं को भी दुखी करता है।

कोमल स्वभाव, सबका भला चाहना, किसी का बुरा न चेतना, क्षमा करना, धैर्य्य रखना, किसी का तिरस्कार न करना, ये काम आयु के बढ़ाने वाले हैं।

जो मनुष्य अपनी खोई हुई चीज़ को, सुचाल से और धीरता से फिर लौटा ले, किसी उपाय से वह फिर लौटा सके, तो वह पुरुष धीर है, वही शूरवीर है और वही सच्चा सत्पुरुष है।

जो मनुष्य आगे के लिए उपायों को जानता है और वर्तमान में दृढ़ निश्चय रखता है। तथा बीते

हुए में शेष काम का ज्ञान रखता है, वह धन से हीन नहीं होता। वह सदा धनी बना रहता है।

मन से, कर्म से या वचन से, जैसा कुछ काम मनुष्य करता है वैसा ही सुख भोगता है। इसलिए सुख चाहने वालों को सदा शुभ काम ही करने चाहिएँ। क्योंकि शुभ कामों ही का फल अच्छा होता है।

रात दिन लगे रहना, ख़ूब परिश्रम करना, लाभ की निशानी है। निरन्तर काम में लगे रहने से मनुष्य की वृद्धि हो जाती है। उसको बड़ा सुख मिलता है।

भला चाहने वाले को क्षमा से बढ़कर कोई हित-कारक काम नहीं है। यह काम धन देने वाला है।

चतुर पुरुष को कोई काम ऐसा न करना चाहिए जो धर्म और अर्थ का विरोधी हो। वह उतना सुख भोगने की इच्छा करे जितने से धर्म और अर्थ न जायँ।

दुखपीडितों को, प्रमादियों को, नास्तिकों को आलसियों को लक्ष्मी नहीं चाहती। और जो लोग उत्साहहीन होते हैं वे भी सदा निर्धन ही रहते हैं।

जो मनुष्य नम्रता वाले को और लज्जा से युक्त पुरुष को शक्तिहीन समझते हैं, उन्हें धमकाते हैं, वे मूर्ख हैं।

हे धृतराष्ट्र! तुम नम्र और लज्जाशील पाण्डवों को शक्तिहीन मत समझो। वे महाबलवान् हैं।

अति मैले मनुष्य को, अति दाता को, अति शूर वीर को, अति व्रत करने वाले को, और बुद्धि के अभिमानी को लक्ष्मी नहीं चाहती। वह मारे डर के ऐसों के पास जाती ही नहीं। बात यह कि यह लक्ष्मी न तो अति गुणवान् के पास रहती, न बिलकुल गुणहीनों के, किन्तु यह तो कहीं ही ठहरती है।

वेद पढ़ने का फल अग्निहोत्र है, पढ़ने का फल सुशील है और सदाचार है; स्त्री का फल पुत्र है और धन का फल दान और भोग है।

हे राजन्! जो बलवान् हैं, जिन्हें अपने बल-पौरुष का सहारा और भरोसा है उन्हें न वन में, न जंगलों में, न कठिन आपत्तियों में, न जल्दी में, न शस्त्रों में और न कहीं भय है।

सदा उद्यत रहना, नियम से चलना, चतुराई से रहना, प्रमादरहित होना, धीरज रखना, बातों को याद रखना, विचार कर काम करना; ये सब काम मनुष्य की उन्नति की जड़ हैं।

तपस्वियों का बल तप है। ब्रह्मज्ञानियों का बल ब्रह्म है। दुष्टों का बल हिंसा है और गुणी का बल क्षमा है।

इन आठ चीज़ों से व्रतभंग नहीं होता—१—जल, २—मूल, ३—फल, ४—दूध, ५—हवि, ६—ब्राह्मण की इच्छा, ७—गुरु का वचन और ८—औषध।

किसी के साथ ऐसा बर्त्ताव न करे जो अपने आपे को पसन्द न हो। यह संक्षेप से धर्म का सार है।

क्रोध को शान्ति और क्षमा से जीते, असाधु को साधुता से, कृपण को कुछ देकर और झूँठ को सत्य से जीते।

स्त्री पर, धूर्त पर, आलसी पर, डरपोक पर, क्रोधी पर, घमण्डी पर, कृतघ्न पर, और नास्तिक पर विश्वास न करे।

जो मनुष्य नित्य वृद्धों की सेवा करते हैं, उन्हें नित्य प्रणाम करते हैं, उनकी आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं।

जो काम बड़े कष्ट से सिद्ध हो, या जो धर्म के उल्लंघन करने से सिद्ध हो, या जो काम शत्रु की शरण लेने से सिद्ध हो, उसे त्याग दो।

वह पुरुष शोच्य है जो विद्यारहित है, वह स्त्री शोचनीय है जिस के सन्तान न हो, भूखी प्रजा शोचनीय है और राज्य वह सोचने योग्य है जिस में राजा न हो।

देहधारियों को मार्ग चलना बुढ़ापा है। अर्थात् मार्ग चलने से मनुष्य को जल्द बुढ़ापा आ जाता है। पर्वतों का बुढ़ापा जल है। स्त्रियों का बुढ़ापा ठाली बैठना या बेकाम रहना है। बुरे वचनों से मन बूढ़ा हो जाता है।

जिस मनुष्य का मित्र दान से अधीन है, जिस का शत्रु युद्ध से अधीन है और जिसकी स्त्रियाँ अच्छे खान-पान, भोजन-वस्त्र से अधीन हैं उसी का जीवन सफल है।

हे राजन्! मैं फिर कहता हूँ कि तुम पुत्रों में एक सा बर्ताव करो। यदि तुम में समता है तो अपने पुत्रों में और पाण्डु-पुत्रों में समान बर्त्ताव करो।

आठवाँ अध्याय ।

फिर विदुर जी ने कहा कि—हे राजन्! झूँठ बोलना, राजा से चुगली करना, गुरु को दोष लगाना, ये तीनों काम ब्रह्महत्या के समान हैं ।

आलस्य, मद, मोह, चञ्चलता, बहुतों से एकान्त में बात चीत, नम्रता न होना, अभिमानीपन और त्यागीपन ; ये सात दोष विद्यार्थियों को त्याग देने चाहिएँ ।

सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ, और विद्यार्थी को सुख कहाँ । इसलिए सुख चाहने वाला विद्या को और विद्या का चाहने वाला सुख को त्याग दे ।

आशा धैर्य्य को मार डालती है । मौत समृद्धियों को मार डालती है । क्रोध लक्ष्मी को, बुरा चाल चलन यश को, और न पालना पशुओं को मार डालता है । हे राजन्! क्रुद्ध हुआ एक ही सच्चा ब्राह्मण राज्य को नष्ट कर देता है ।

हे राजन्! मैं अन्त में तुमसे एक सार बात कहता हूँ । वह यह कि—काम, भय, लोभ और

जीवन के लिए भी कभी धर्म को मत छोड़ो। हे राजन् ! धर्म नित्य रहता है। सुख दुःख सदा नहीं रहते। जीव नित्य है और जीवका हेतु—प्राण—अनित्य है। तुम अनित्य को छोड़ कर नित्य का सेवन करो। तुम सन्तोष करो। सन्तोष ही परम सुख है। सन्तोष ही बड़ा लाभ है।

हे राजन् ! तुम अभिमान मत करो। पहले राजाओं को देखो, जो धन धान्य से भरपूर पृथ्वी को और सब भोगों को यहीं छोड़कर मृत्यु के वश में हो गये।

मर जाने पर उसके धन को दूसरे ही भोगते हैं, उसके शरीर को पक्षी और अग्नि खा डालते हैं। बस इसके साथ तो पाप और पुण्य ही जाते हैं। और कोई नहीं।

हे राजन् ! तुम मेरे कहने से काम करोगे तो तुम्हारा भला होगा। फिर तुम को किसी लोक में डर न रहेगा।

हे भारत ! आत्मा एक नदी है। पुण्य उसका घाट है। सत्य उसका जल है। धैर्य्य उसके किनारे हैं। दया उसकी लहर है। पुण्यात्मा उस नदी में न्हाकर पवित्र हो जाता है। पर जो पुरुष लोभ-

रहित है वह तो उसमें न्हावे या न न्हावे, पर तो भी वह सदा पवित्र हो रहता है।

हे राजन्! एक और नदी है जिसके काम और क्रोध ये दो बड़े भारी ग्राह हैं। पाँच इन्द्रियाँ ही उसका जल है। ऐसी नदी को धैर्यरूपी नाव बना कर, जन्मरूप दुर्गों (दुःखों) को तर जाओ।

जो मनुष्य बुद्धि में बड़े, आयु में बड़े, विद्या में बड़े, धर्म में बड़े अपने भाई बन्धु को सब काम में पूछता है, सब काम में उसकी सलाह लेता है, वह कभी नहीं भूलता। उसके किसी काम में भूल नहीं हो सकती।

पेट को और गुप्तेन्द्रिय को धैर्य से बचावे; हाथ पाँव को आखों से; आँख कान को मन से, और मन तथा वाणी को सत्कर्म से बचावे।

नित्य जल से शरीर को शुद्ध रखने वाला, नित्य यज्ञोपवीत पहनने वाला, नित्य वेदपाठी, और नीच अन्न का न खाने वाला ब्राह्मण कभी ब्रह्मलोक से नहीं गिरता।

जिसने वेद अच्छी तरह पढ़ लिए हों, जिसने अग्नि को तृप्त कर लिया हो, जिसने यज्ञों से देवताओं

की पूजा की हो, जिसने अच्छी तरह प्रजाओं का पालन किया हो, गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए जिसका अन्तरात्मा सर्वदा प्रसन्न रहता है, ऐसा क्षत्रिय यदि संग्राम में मर जाय तो स्वर्ग पाता है।

विद्या पढ़ कर, ब्राह्मणों और क्षत्रियों और आश्रितों को समय पर धन से सत्कार करके, अग्निहोत्र के धुएँ को सूँघने वाला वैश्य, मर कर स्वर्ग को जाता है। वह मर कर बहुत सुख पाता है।

जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की न्याय-पूर्वक सेवा करता है, वह ब्राह्मण आदि के प्रसन्न होने पर दुःखों से छूट कर स्वर्ग के सुखों को भोगता है।

हे राजन्! यह मैंने चारों वर्णों के धर्म कहे। देखो, इस सब कहने का मतलब यही है कि पाण्डु का पुत्र महात्मा युधिष्ठिर क्षत्रियों के धर्म से हीन हुआ जाता है। इसलिए हे राजन्! तुम उसको राजधर्म में नियुक्त करो। उसे राज में भाग दो।

इतना उपदेश सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, जिस तरह तुम मुझे समझा रहे हो मेरी भी वैसी ही सम्मति है। मैं भी वैसा ही करना चाहता हूँ जैसा तुम मुझ से कह रहे हो।

परन्तु हे विदुर! एक बात बड़ी बेढ़ब आ पड़ती है। वह यह कि जब मैं अपने पुत्र दुर्योधन के पास जाता हूँ तब यह मेरी सम्मति बिलकुल उलटी हो जाती है। दुर्योधन के सामने मेरी वैसी सम्मति नहीं रहती। हे विदुर! कोई प्राणी प्रारब्ध का उल्लंघन नहीं कर सकता। मेरी सम्मति में तो प्रारब्ध ही मुख्य है; वही स्थिर है। पुरुषार्थ व्यर्थ है।

शुक्रनीति।

पहला अध्याय।

राजा को चाहिए कि वह सदा नीति-शास्त्र का अभ्यास करता रहे। इस के अभ्यास से राजा शत्रुओं को जीत कर सारे संसार का प्यारा हो सकता है।

जिस तरह विना भोजन के शरीर नहीं रह सकता, इसी तरह विना नीति-शास्त्र के कोई व्यवहार ठीक ठीक नहीं हो सकता।

राजा के दो ही प्रधान काम हैं—प्रजा का पालन और शत्रुओं का नाश। सो ये भी नीति के विना नहीं हो सकते।

जो राजा विना नीति के जाने राज्य करता है, वह दुःख का भागी होता है। ऐसे राजा की सेवा करना भी मानो तलवार से खेल करना है।

आचार का प्रेरण करने वाला राजा ही होता है। इसलिए राजा ही काल का कारण है। जो केवल काल ही कारण हो तो देहधारियों में धर्म कहाँ से हो। तात्पर्य यह कि राजा के बिना काल भी कुछ नहीं कर सकता।

राजदण्ड के डर से सारा संसार अपने अपने कामों में लगा रहता है। जो अपने धर्म में दृढ़ है वही तेजस्वी है।

अपना धर्म ही सुखदायक है। धर्म ही परम तप है। तप स्वधर्म रूप है। यह स्वधर्म राजा से ही बढ़ाया जा सकता है।

धर्मात्मा मनुष्य के देवता भी सेवक हो जाते हैं फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? धर्मात्मा राजा प्रजा को भी धर्म में स्थिर रखता है।

जो राजा धर्म से प्रजा का पालन करता है, जो सब यज्ञ करता है, जो शूरवीर है, जो विषयों में आसक्त नहीं है और जो सत्त्वगुणी है, वह राजा अन्त में मोक्ष पाता है।

सुख और दुःख का कर्म ही कारण है। पूर्व-जन्म-कृत कर्म ही को प्रारब्ध कहते हैं। कोई भी, कभी, बिना किये नहीं रह सकता।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये जन्म से ही नहीं होते किन्तु गुण और कर्म से होते हैं।

यों तो सारे जीव ब्रह्मा से पैदा हुए हैं तो क्या वे सब ब्राह्मण हो जायँगे? कभी नहीं। वर्ण से या जन्म से ब्राह्मणता नहीं आती।

जो मनुष्य ज्ञान, कर्म और उपासना से देवाराधन में तत्पर रहता है, जो शान्त और जितेन्द्रिय और दयालु होता है, वही मनुष्य ब्राह्मण है।

जो लोक की रक्षा करने में चतुर, शूरवीर, जितेन्द्रिय और पराक्रमी तथा दुष्टों को दण्ड दे सकता हो, वही मनुष्य क्षत्रिय है।

जो लेन, देन, व्यवहार में चतुर होता है, जो प्रतिदिन दूकानदारी करता है, जो पशुओं का पालन और खेती करता है, वही वैश्य है।

जो मनुष्य इन तीनों वर्णों की सेवा करता है और शान्त, जितेन्द्रिय, लकड़ी आदि के ले जाने का काम करता है वही शूद्र है।

इनके सिवा जो मनुष्य अपने धर्म को छोड़ देते हैं, निर्दयी हैं, जो दूसरों को पीड़ा देने वाले हैं, जो हिंसक और अविवेकी हैं, वे म्लेच्छ कहलाते हैं।

पहले जन्म के कर्मानुसार फल भोगने के लिए मनुष्य की वैसी ही बुद्धि हो जाती है।

जैसे कर्म के फल का उदय होता है, मनुष्य की वैसी ही बुद्धि हो जाती है। और, सहायक भी उसे वैसे ही मिल जाते हैं जैसी भवितव्यता होती है।

परन्तु यदि यही निश्चय मान लिया जाय कि पूर्वकर्म के अधीन ही सब कुछ होता है तो अच्छे बुरे काम के बताने वाले उपदेश व्यर्थ हो जायँगे।

सदाचारी और बुद्धिमान् मनुष्य पुरुषार्थ ही को बड़ा मानते हैं। पर जो नपुंसक हैं—कायर हैं—वे प्रारब्ध ही के सहारे रहा करते हैं।

सारा जगत् प्रारब्ध और पुरुषार्थ ही के सहारे टिका हुआ है। पूर्वजन्म के कर्म प्रारब्ध कहाते हैं और इस जन्म के कर्म पुरुषार्थ। एक ही कर्म दो प्रकार का है।

बलवान् दुर्बल को दबा लेता है—यह स्वाभाविक बात है। कौन बलवान् है और कौन निर्बल—इस बात का ज्ञान फल मिलने पर होता है। मतलब यह कि यदि प्रारब्ध बलवान् है और पुरुषार्थ निर्बल है तो प्रारब्ध पुरुषार्थ को दबा लेता है। यदि पुरु-

षार्थ प्रबल है तो वह प्रारब्ध को दबा लेता है। जिस कार्यसिद्धि के लिए मनुष्य उद्योग करता है यदि वह कार्य सिद्ध हो गया तो समझना चाहिए कि पुरुषार्थ प्रबल रहा और कितने ही उपाय करने पर भी काम सिद्ध न हो तो समझना चाहिए कि प्रारब्ध बलवान् रहा।

कर्म के फल की कोई मूर्ति नहीं जो सबको दीखती हो। पर यह निश्चय है कि प्रारब्ध के अनुसार ही फल मिलता है। अन्यथा नहीं।

यदि किसी मनुष्य को थोड़ा सा उद्योग करने पर बड़ा फल मिल जाता है तो यह भी पूर्वजन्म-कर्म ही की महिमा समझनी चाहिए।

किसी का मत यह भी है कि इसी जन्म के पुरुषार्थ से सब कुछ होता है। क्योंकि यदि तेल-बत्ती सहित दीपक की हवा आदि से रक्षा न की जाय तो क्या वह जल सकता है? कभी नहीं।

यदि अवश्य होने वाली भवितव्यता का प्रतीकार न होता तो अपने बुद्धि-बल और पराक्रम से दुष्टों का नाश करके संसार में शान्ति कैसे होती? अर्थात् पुरुषार्थ से भावी भी अन्यथा हो सकती है।

प्रतापी रावण का बागीचा एक बन्दर ने उखाड़ डाला और महाबली महात्मा भीष्म जी, जो देवताओं से भी नहीं जीते जा सकते थे, एक नर (अर्जुन) के हाथ से मारे गये। इन बातों के विचारने से प्रतीत होता है कि कभी कुछ का कुछ भी हो जाया करता है।

प्रारब्ध की विपरीतता में भारी सुकर्म भी अनिष्ट-फलदायक हो जाता है। देखो बलि और हरिश्चन्द्र दान से भी बन्धन में पड़ गये।

सत्कर्म से सुख और असत्कर्म से दुःख मिलता है इसलिए मनुष्य सदा सत्कर्म ही करता रहे।

राज्य के सात अंग प्रधान हैं। वे ये हैं—राजा, मन्त्री, मित्र, कोश, देश, दुर्ग, सेना। इन सबमें मुख्य राजा ही है।

इस राजा के मन्त्री नेत्र हैं; मित्र कान हैं, कोश मुँह है, सेना मन है, दुर्ग हाथ है और देश पाँव है।

जो अच्छी तरह नीति का जानने वाला राजा न हो तो प्रजा इस तरह नष्ट हो जाय जैसे विना मल्लाह के समुद्र में जहाज़।

राजा के बिना प्रजा अपने धर्म में नहीं रह सकती। इसी तरह बिना प्रजा के राजा की भी कुछ शोभा नहीं।

न्यायी राजा प्रजा को धर्म और अर्थ में लगाता है। अधर्मी राजा प्रजा का धर्म और अर्थ नष्ट कर डालता है।

धर्मात्मा राजा में देवताओं का अंश होता है और पापी राजाओं में राक्षसों का। राक्षसी अंश वाले राजा से धर्म का लोप हो जाता है और प्रजा दुःखी रहा करती है।

जो राजा अपना एक मन ही नहीं जीत सकता, वह समुद्र पर्य्यन्त पृथिवी को कैसे वश में रख सकेगा।

राजा नल और राजा युधिष्ठिर जुए के व्यसन से बड़े दुःख को प्राप्त हुए थे, इसलिए राजा को जुआ कभी न खेलना चाहिए।

रक्षा न करने वाले राजा को, तप न करने वाले ब्राह्मण को और दान न करने वाले धनी को देवता मार डालते हैं—उन्हें नरक में डाल देते हैं।

स्वामीपन, दानी, और धनी होना पुण्य का फल है और दास होना, याचक होना और दरिद्र होना पाप का फल है।

जिस राजा के काम से प्रजा उद्वेग को प्राप्त होती है और जिस राजा के काम का प्रजा विरोध करती है, उस राजा को गुणी और धनी मनुष्य त्याग देते हैं। वह राजा अधम है।

जो राजा अपने दुर्गुणों के छिपाने के लिए कोप करता है वह दुरात्मा है। देखो लोकापवाद के डर से पतिव्रता सीता जी को ही श्रीरामचन्द्रजी ने त्याग दिया था।

जितेन्द्रिय और नीतिज्ञ राजा की लक्ष्मी बढ़ती है और कीर्ति स्वर्ग तक छा जाती है।

अपना सुख चाहता हुआ राजा किसी दुःखी को कभी न सतावे। सताया हुआ दुखिया मर कर राजा को मार डालता है।

ऐसी बात कभी न कहनी चाहिए जिसको सुन कर किसी का जी दुःख माने।

सब प्राणियों पर दया, मित्रता, दान और प्रिय वचन बोलना; ये ही वशीकरण-मन्त्र हैं।

दूसरा अध्याय ।

जब छोटा सा भी काम एक आध सहायक से दुःख से होता है तब इतना बड़ा राज्य क्यों न दुष्कर होगा ?

चाहे राजा कितना ही चतुर और कितना ही नीतिज्ञ क्यों न हो, मन्त्रियों की सलाह के बिना अकेला कभी राज-काज न करे।

राजा अपनी ही राय से सब काम न करे किन्तु सभ्य, अधिकारी, प्रजा और मन्त्रियों की सलाह से काम करे।

स्वतन्त्रता को प्राप्त होकर राजा बड़ा अनर्थ कर डालता है। उसका राज्य छिन्न भिन्न हो जाता है और उसकी प्रजा भी उससे भिन्न हो जाती है।

जिस राजा के सहायक निन्दित होते हैं उसका धर्म और राज्य जाता रहता है। निन्दित काम और निन्दित सहायकों से ही दैत्यों का नाश हो गया।

निन्दित सहायकों से बलवान् दुर्योधन भी नष्ट हो गया। इसलिए राजा निरभिमानी और अच्छे सहायक रक्खे।

राजा को चाहिए कि वह अपने राज्य के महाजनों का अपमान न करे और न उन्हें पीड़ा दे। ख़ूब बढ़ा हुआ भी राजा अपने पिता की आज्ञा में रहे।

पिता की आज्ञा मानना ही पुत्र का परम धर्म है। देखो पिता के कहने से परशुराम जी ने अपनी माता मार डाली और रामचन्द्र जी वन को चले गये।

भाइयों में अपनी ही अधिकता न दिखावे; अपने को सब भाइयों में उत्तम न गिने, क्योंकि भाग के योग्य भाइयों के अपमान से दुर्योधन नष्ट हो गया।

राजा ययाति और ऋषि विश्वामित्र के पुत्र, पिता की आज्ञा न मानने के कारण नष्ट हो गये। इसलिए पुत्र को उचित है कि वह मन, वाणी और शरीर से सदा पिता की आज्ञा में रहे।

पुत्र को वह काम करना चाहिए जिससे पिता प्रसन्न हों और ऐसे काम कभी न करे जिनसे पिता नाराज़ हों।

जिस मनुष्य से पिता का मेल-जोल हो उससे आप भी मेल-जोल रक्खे और जिससे पिता का द्वेष हो उससे आप भी द्वेष ही रक्खे।

प्रजा की सम्मति के बिना राज्य नष्ट हो जाता है। इस बात के जानने वाले मन्त्री लोग सुमन्त्री कहलाते हैं।

एक एक काम के लिए तीन तीन मनुष्य नियत करने चाहिएँ। उनमें से एक को उनका मुखिया करना चाहिए। उस काम के दो निरीक्षक रक्खे और तीन, पाँच, सात या दस बरस में उनको बदलता रहे।

तीसरा अध्याय।

धर्म के बिना सुख नहीं होता। इसलिए सदा धर्म करता रहे। जिस काम से धर्म, अर्थ, काम न हो उसे न करे।

सदा धर्मानुकूल ही बर्ताव रक्खे। बाल, नाखून और मूँछे न रक्खे और पैरों को निर्मल रक्खे।

कीड़े मकोड़ों को भी अपने ही समान समझे। अपकारी शत्रु पर भी उपकार ही करे।

मा, बहन और बेटी के साथ भी एकान्त में न बैठे। नाते के अनुसार सम्बोधन करके स्त्रियों को पुकारे।

क्षण भर भी स्त्रियों को स्वतन्त्रता न दे। उनके कुटुम्बियों को चाहिए कि वे स्त्रियों को व्यर्थ किसी के घर न जाने दें। उन्हें बिना काम के ठाली कभी न बैठने दें।

टूटी नाव और टूटी सवारी और वृक्ष पर कभी न चढ़े। अपनी नाक को न खुजावे और न पृथिवी को खोदे।

मनुष्य कभी यह न सोचे कि मैं हज़ारों पापों का करने वाला हूँ इस एक पाप से मेरा क्या बुरा होगा। यह जानकर कुछ भी पाप न करे। क्योंकि बूँद बूँद पानी से घड़ा भर जाता है।

सत्पुरुषों के किये हुए आचरणों को याद करे और-श्रुति-स्मृति में कहे गये धर्म-कर्मों को जाने।

यदि किसी अनुभवी सज्जन की बात न मान कर काम किया हो और उसका फल विपरीत निकले तो इसमें शोक की कौन बात है? ऐसा तो होना ही था।

स्वादु पदार्थ को अकेला न खाय। किसी बात को अकेला न बिचारे। मार्ग में अकेला न चले और बहुतों के सोते हुए आप अकेला न जागे।

अनुचित और अनर्थकारी बात कभी न कहे और जिसमें सारे संसार की हानि हो ऐसा धर्म का काम भी स्वर्ग का देने वाला नहीं होता।

अपनी युक्तियों से किसी की बात न काटनी चाहिए। उत्तर विचार कर देना चाहिए। बिना बिचारे जल्द उत्तर न देना चाहिए।

धनाढ्यता और दरिद्रता पूर्व कर्मों के फल हैं। इसलिए किसी से वैर न करे। सबसे मित्रता रक्खे।

आलसी मनुष्य काम के समय में भी काम नहीं करता। उस आलसी का कभी कोई काम सिद्ध नहीं होता। वह वंशसहित नष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य काम के फल को बिना सोचे समझे काम करना शुरू कर देता है वह ठीक नहीं है। क्योंकि ऐसे काम के फल में उसे सदा दुःख ही मिलता है।

विश्वासपात्र जन का भी कभी अधिक विश्वास न करे। पुत्र, स्त्री, भाई, मंत्री और अधिकारी का भी पूरा विश्वास न करे।

विद्या, शूर वीरता, धन, कुल और बल पर कभी प्रमाद न करे। इनका कभी अत्यन्त अभिमान न करे।

जिसको विद्या का अभिमान हो जाता है वह अपने अनर्थ वाक्यों को भी सदा परमार्थकारी ही जाना करता है।

जिसे अपनी शूरवीरता का घमंड हो जाता है वह शत्रुओं से व्यर्थ लड़ाई कर बैठता है। वह शत्रुओं के हाथों युद्ध में जल्द मारा जाता है।

धन का अभिमानी मनुष्य अपनी कुकीर्त्ति को नहीं जानता। वह उस बकरे के समान है जो अपने ही मूत्रगन्ध को मूत्र से सींचा करता है।

कुलाभिमानी जन सब किसी का अपमान ही किया करता है। वह सदैव निन्दित कामों को ही करता रहता है।

बलाभिमानी मनुष्य लड़ाई दंगा ही करता रहता है। वह सदा सबको दुःख ही पहुँचाया करता है।

प्रतिष्ठाभिमानी जन सारे जगत् को तिनके के समान समझने लगता है। वह सबसे अयोग्य होने पर भी उच्चासन की इच्छा किया करता है।

दो वहन, दो भाई और दो शिष्य, इन में कभी भेद न करावे। वात करतें हुए दो पुरुषों में कभी न जाना चाहिए।

कोई याचक कुछ माँगे तो उसको कोरा जवाब न दे। यदि समर्थ हो तो उसका कार्य करदे या करा दे।

अन्न की कभी निन्दा न करे। सदैव प्रीति से भोजन करे। उस छः रस वाले भोजन को सदा अच्छा समझे।

रात्रि के पहले और पिछले पहर को छोड़ कर वीच के समय में शयन करे।

अंधे, दीन, लँगड़े और वहिरे की हँसी कभी न करे।

वुरे काम में कभी मन न लगावे। अपना काम उद्योग, वल और वुद्धि और साहस से जल्द कर डाले।

वड़ों की और राजा की आज्ञा का भंग कभी न करे।

काम के सुझाने वाले छोटे आदमी की भी वात माननी चाहिए। जवान स्त्री को कभी स्वतन्त्र न छोड़ना चाहिए।

अंगहीन, संन्यासी, दीन, अनाथ, इनका पालन करना चाहिए। और ऐसे कुटुम्ब का भी जिस का पालन पोषण करनेवाला कोई न हो।

जिसने अपने कुटुम्ब का पालन न किया और न शत्रुओं को नवाया, ऐसे मनुष्य के गुणों से क्या मतलब? वह जीता हुआ भी मरा ही है।

जिसने प्राप्त हुए पदार्थों की रक्षा नहीं की उसके जीने से क्या? सदा स्त्रियों के वश में रहे, जो सदैव ऋणी रहे, जो महादरिद्री हो, जो याचक हो, जो गुणहीन हो, और जो शत्रुओं के अधीन हो, वह जीता हुआ भी मरा हुआ है।

एक ही शास्त्र का पढ़ने वाला पुरुष कार्य्य का निर्णय नहीं समझ सकता। अनेक शास्त्रों का जानने वाला ही सब बातों को समझ सकता है।

श्रुति, स्मृति और पुराणों का ज्ञान तथा पाण्डित्य; ये विद्वानों के संग रहने से मिलते हैं, अन्यथा नहीं।

देवता, पितर और अतिथि को बिना दिये भोजन न करे। जो इनको बिना दिये भोजन करता है वह नरक के लिए जीता है।

गाड़ी से पाँच हाथ, घोड़े से दस हाथ, हाथी से सौ हाथ और बैल से दस हाथ दूर रहना चाहिए।

नखवाले, सींगवाले और दाढ़ वाले जीवों का, दुर्जन का, स्त्रियों का और नदी के किनारे वास का कभी विश्वास न करना चाहिए।

मार्ग चलते चलते भोजन न करे; हँसी से बात चीत न कहे; खोई हुई वस्तु का शोक न करे; और अपने काम की आप प्रशंसा न करे।

जिससे किसी प्रकार की शंका हो उसके पास न रहे, नीच की सेवा न करे और किसी की बातों को छिप कर न सुने।

छल से व्यवहार न करे; किसी की जीविका का नाश न करे; मन से भी किसी का बुरा न चेते; सदैव ऐसा काम करे जिससे सदैव सुख ही मिले।

साँप, सिंह और चोर को मारने के लिए अकेला न जाय। मारते हुए आततायी गुरु को भी न छोड़े; मार डाले।

लड़ाई दंगे में किसी की सहायता न करे। जिसके पास सेना अधिक हो उसकी सहायता

करे। गुरु और राजा के सामने ऊँचे आसन पर न वैठे।

जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य काम को कहता नहीं, करता ही रहता है वह, और जो स्त्रियों की बातों को बिना देखे नहीं मानता, वह, ये दोनों उत्तम मनुष्य हैं।

विद्यार्थी को क्षण भर भी व्यर्थ न जाने देना चाहिए और धनका संचय करने वाले को कण कण, कौड़ी कौड़ी जोड़नी चाहिए। श्रेष्ठ स्त्री और पुत्र के लिए सदा धन-संचय करना चाहिए, परन्तु यदि दान नहीं किया जाता तो इनकी रक्षा से भी क्या?

"मैं सौ बरस जीऊँगा और धन से सुख भोगूँगा" ऐसा सोच कर धन और विद्या का संचय करना चाहिए।

विद्यारूपी धन सब धनों से उत्तम है। यह दान से नित्य बढ़ता है। इसका भार नहीं होता। इसे कोई चोर आदि ले नहीं जा सकता। धनवान् की तो तभी तक लोग सेवा करते हैं जब तक उसके पास धन रहता है पर विद्यावान् की सर्वदा और सर्वत्र सेवा होती रहती है।

निर्धन मनुष्य को—चाहे वह कितना ही गुणी क्यों न हो—स्त्री, पुत्र आदि सब त्याग देते हैं; परन्तु संसार के कारबार चलाने के लिए धन ही सार है।

इसलिए मनुष्य सदा साहस से ऐसा उपाय करता रहे जिससे धनवान् हो। धन इन कामों से मिल सकता है। उत्तम विद्या, सेवा, शूरवीरता, खेती, सूद की वृद्धि, व्यवहार, गुण, दान लेना और और भी अनेक वृत्ति।

धनवान् को चाहिए कि वह पालन योग्य पुत्र आदि का अच्छी तरह पालन करे। वह एक दिन भी दान के बिना ख़ाली न जाने दे।

"मैं मृत्यु के मुँह में आया हुआ हूँ, मेरा अवस्था क्षण भर की है"—यह सोच कर मनुष्य दान और धर्म करने में देर न करे।

मनुष्य यह सोचे कि सिवा दान पुण्य के परलोक में मेरी कोई सहायता न करेगा। दान से ही सुख मिलता है। देने से शत्रु भी वश में हो जीते हैं।

उपकार और तिरस्कार भी बिना विचारे न करे। क्रूरता, शठता और अति मृदुता भी न करे।

कठोर वचन बोलने से मित्र भी तत्काल शत्रु हो जाता है। कठोर वचनरूपी शस्त्र से लगा हुआ हृदय का घाव नहीं भर सकता।

धूर्त मनुष्यों का स्वभाव होता है कि वे औरों को तो साधुओं के समान उपदेश किया करते हैं पर आप सैकड़ों कुकर्म किया करते हैं।

जो पुत्र माँ-बाप की आज्ञा माने, उनकी सेवा में आलस्य न करे, छाया की तरह उनके साथ रहे, सब विद्याओं में कुशल हो, तो वह पिता को आनन्द देने वाला होता है। इसके विपरीत जिसमें ये बातें नहीं होतीं, जो दुर्गुणी और धननाश करने वाला हो, वह पिता को दुःखदायी होता है।

जो स्त्री भक्ति से पति की सेवा करती हो, घर के काम-धन्धों में चतुर हो, पुत्रवती, और सुशीला हो वह पति की प्यारी होती है।

जो पिता पुत्र को अच्छी शिक्षा करे, उसको विद्या पढ़ाने के लिए पूरा प्रयत्न करे और उसकी आजीविका का प्रबन्ध कर दे तो वह अपने ऋण से छुट जाता है।

मित्र वही है जो सदा सहायता करे, सदा अपने अनुकूल रहे, सत्य और हितकारी बात कहे और माने।

अपनें धर्म में तत्पर रहते हुए ब्राह्मण से सब कार्य हुआ करते हैं। इसलिए ब्राह्मण को चाहिए कि वह सदा अपने धर्म-कर्मों को करता रहे।

आजीविका वही अच्छी जिसमें अपने धर्म की हानि न हो और देश भी वही अच्छा जिसमें अपने कुटुम्ब का पालन हो।

राजसेवा के बिना पुष्कल धन की प्राप्ति नहीं हो सकती। पर राजसेवा है बड़ा कठिन काम। इसे बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य कर सकता है। राजसेवा क्या है तलवार की धार है।

पहले निर्धनता और फिर धनाढ्यता हो तो अच्छी। इसी तरह पहले पैदल चलना और फिर सवारी पर चढ़ना अच्छा होता है।

सन्तान के मरने से उसका न होना अच्छा, बुरी सवारी से पैदल चलना अच्छा, और विरोध करने से उदासीन ही रहना अच्छा।

दूसरे के घर रहने से तो वन में ही रहना भला है। दुष्ट स्त्री से तो भिक्षा से जीना या मरना ही अच्छा।

कुमन्त्रियों से राजा, कुवैद्यों से रोगी, कुराजा से प्रजा, कुसन्तान से कुल और कुबुद्धि से आत्मा नष्ट हो जाता है।

बड़ाई करने से देवता भी वश में हो जाते हैं। फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? किसी के दुर्गुणों को प्रत्यक्ष न कहे।

मनुष्य अपने दुर्गुणों को आप विचारे और यदि कोई अपने दुर्गुण कहे तो उसको सुन कर न प्रसन्न हो और न दुःखी।

"मैं दुर्गुणों की खान हूँ। मुझ में गुण कहाँ। मुझ में मूर्खता भरी पड़ी है"—जो ऐसा विचार करता है वह सबसे उत्तम है।

निर्धनता में भी किसी की चीज़ बिना दिये न ले। अपने बालक को शिक्षा दे और पराये बालक का कभी अपराध न करे।

पराधीनता के समान दुःख नहीं और स्वाधीनता के बराबर कोई सुख नहीं। गृहस्थी अप्रवासी और अपने घर में रहने वाला, स्वतन्त्र होता है। वही नित्य सुखी है।

चौथा अध्याय ।

राजा का कोई मित्र नहीं और न राजा ही किसी का मित्र है ।

विद्या, शूरवीरता, चतुराई, बल और धीरता, ये पाँच मनुष्य के स्वाभाविक मित्र हैं । बुद्धिमान् जन इन्हीं मित्रों से काम लेते हैं ।

हिंसक, दुराचारी, स्वाभाविक शत्रु, ऋण करने वाला पिता और व्यभिचारिणी माता, ये शत्रु होते हैं ।

अपने पिता के भाई, उनकी स्त्रियाँ और पुत्र, उन पुत्रों की बहुएँ, सास-बहू, सपत्नी (सौत), देवरानी-जेठानी, ये परस्पर शत्रु होते हैं ।

चोरों के द्वारा शत्रुओं को पीड़ा देनी, धन-धान्य का नाश करना, उसके छिद्रों को देखना, नीति से भय दिखाना, युद्ध में न हटकर उनको भयभीत करना, शत्रु के लिए दण्ड है ।

प्रजा को दण्ड देने और भेद कराने से राज्य का सत्यानाश हो जाता है । इसलिए राजा प्रजा की इस तरह रक्षा करे कि जिस तरह प्रजा में प्रसन्नता रहे ।

उपटना, धन ले लेना, पुरनिर्वासन, उलटा क्षौर कराना, गधे आदि पर चढ़ाना, अङ्गछेदन, और युद्ध, ये सब उपाय दण्ड कहाते हैं। दण्ड ही के भय से प्रजा धर्म में स्थिर रहती है। दण्ड के ही प्रताप से लोग उद्दण्डता और असत्यभाषण को छोड़ देते हैं। दण्ड के ही भय से क्रूर जन कोमल हो जाते हैं। इसी के प्रताप से दुष्टों की दुष्टता भड़ जाती है। दण्ड से पशु भी वश में हो जाते हैं और चोर भाग जाते हैं। निन्दक लोग निन्दा करनी बन्द कर देते हैं और हिंसक भयभीत हो जाते हैं। दण्ड से ही प्रजा कर देती है और दण्ड से ही प्रजा भयभीत रहती है। इसलिए राजा को सदा धर्म की रक्षा के लिए दण्डधारी होना चाहिए।

जो गुरु भी अभिमानी हो, उसे धर्माधर्म, कार्य-अकार्य का ज्ञान न हो, तो राजा उसको भी शिक्षा दे।

राजा के सारे काम दण्ड ही से सिद्ध होते हैं। दण्ड ही सारे धर्मों की रक्षा का स्तम्भ कहा गया है।

दण्ड-योग्य को दण्ड न देना और दण्ड के अयोग्य प्राणी को दण्ड देना, या अत्यन्त दण्ड देना, इन कामों से गुणी लोग राजा को छोड़ देते हैं। वह

राजा पातकी हो जाता है। जैसे थोड़े से दान का बड़ा फल मिलता है इसी तरह दण्ड योग्य को दण्ड देने से राजा को फल मिलता है।

कलियुग में राजा की दुष्टता से प्रजा निर्धन हो जाती है। इसलिए इस युग में आधा दण्ड कहा है। धर्म-अधर्म की शिक्षा से राजा ही युगों का प्रवर्तक माना गया है।

युगों का और प्रजाओं का कुछ दोष नहीं है। दोष केवल राजा का ही है। क्योंकि प्रजा वही आचरण करती है जिसमें राजा प्रसन्न रहे।

किसी प्रकार से को हो, जो राजा शिक्षा करे तो उसे प्रजा कैसे न करेगी, ज़रूर करेगी। यदि राजा पुण्यात्मा और धर्मात्मा है तो प्रजा भी धर्मिष्ठ बन जाती है।

जहाँ का राजा पापिष्ठ होता है वहाँ की प्रजा भी अधर्म में तत्पर हो जाती है। वहाँ न समय पर मेघ वर्षा करते हैं और न पृथिवी अच्छे अच्छे फलों को पैदा करती है। उस देश का नाश हो जाता है, और शत्रुओं की बढ़ती हो जाती है। शराबी राजा तो अच्छा, पर व्यभिचारी और अत्यन्त क्रोधी राजा

अच्छा नहीं। शराबी राजा तो सिर्फ़ एक बुद्धि और कामों से भ्रष्ट होता है पर क्रोधी राजा प्रजा को बड़ा दुःख देता है और व्यभिचारी राजा वर्णों का नाश कर डालता है।

काम और क्रोध ये दोनों बड़े भारी मद हैं। ये सबसे अधिक मदकारी हैं। अधिक लोभ के वश में आकर प्रजा के धन और प्राण को हर लेता है। इसलिए राजा इन सब मदों को छोड़ कर दण्डधारी हो। वह भीतर कोमल और बाहर से कठोर स्वभाव रक्खे।

जो राजा सूचना करने पर काम को विचारे और जो अपना और प्रजा का दोष देखता है, वही उत्तम राजा है।

राजा लोभ से दण्ड देकर प्रजा को दुःखी न करे। अपराधियों (पिता आदि) का यदि कोई सहायक न हो तो दण्ड न दे।

इन नीचे लिखे हुओं को राजा राज्य से बाहर निकाल दे—शराबी, धूर्त, चोर, जार, क्रोधी, हिंसक, वर्ण और आश्रम का त्यागी, नास्तिक, शठ, व्यर्थ दुःखदायी, निन्दक, सज्जन और देवताओं का निन्दक, झूठा, धरोहर का हरने वाला, जीविका का नष्ट

करने वाला, दूसरे की बढ़ती न चाहने वाला, रिशवतख़ोर, कुकर्मी, सलाह और कार्यों को नष्ट करने वाला, अनिष्ट या कठोर वचन कहने वाला, जल और बाग़ का नाश करने वाला, घर घर नक्षत्रों को बताने वाला ज्योतिषी, राजा का वैरी, कुमन्त्री, कुवैद्य. अमंगली, सदा अशुद्ध रहने वाला, मार्ग का रोकने वाला, झूँठी गवाही देने वाला, उद्धत वेष रखने वाला, स्वामी का द्वेषी, अधिक और फ़िज़ूल ख़र्च करने वाला, आग लगाने वाला, वेश्यागामी, भारी दण्ड का देने वाला, पक्षपाती सभासद, धींगी से लिखाई लेने वाला, अन्यायी, कलह करने वाला, युद्ध से पीठ देकर भागने वाला, गवाही को छिपाने वाला, माँ, बाप, स्त्री और मित्र के साथ द्रोह करने वाला, पराये गुणों में दोषों को ढूँढने वाला, शत्रु का सेवक, मर्मछेदी, ठग, अपने बन्धु से द्वेष करने वाला, गुप्त आजीविका करने वाला, वर्णसंकर, ग्रामकंटक, कुटुम्ब का भरण पोषण किये बिना तप करने वाला, समर्थ होकर भिक्षा माँगने वाला, कन्या बेचने वाला कुटुम्ब की जीविका का नाश करने वाला, अधर्म का सहायक, राजा का अनिष्ट-कारी, व्यभिचारिणी का पति, स्वतन्त्र पुत्र और स्त्री

वृद्धों की निन्दा करने वाला, घर के काम-धन्धे न करने वाली पुत्रवधू; इन दुष्टों को राजा नगर से बाहर निकाल दे। किसी द्वीप में या किसी क़िले में बाँध कर बसा दे।

जब तक राजा धर्मशील रहता है तब तक वह राजा रहता है, नहीं तो देश और राजा, दोनों, नष्ट हो जाते हैं।

जो मनुष्य माँ; बाप और स्त्री को त्याग कर स्वतन्त्र हो बैठे, राजा उसे बेड़ियों से बाँध कर संसार के मार्ग में लावे।

सेना, प्रजा की रक्षा और यज्ञ के लिए राजा कोश (ख़ज़ाने) की वृद्धि करे। इस प्रकार का धन दोनों लोकों में सुखदायी होता है, अन्यथा नहीं।

जो कोश स्त्री और पुत्र के भरण पोषण के लिए ही किया जाता है वह केवल उपभोग के लिए है। उससे परलोक में दुःख मिलता है। सुख कभी नहीं मिलता।

जो मनुष्य सुमार्ग से धन कमाता है और सुमार्ग ही में ख़र्च करता है वह पात्र होता है। वह धन का पात्र है। इस के विपरीत कुपात्र है। वह धन का

पात्र नहीं। यदि राजा कुपात्र का सारा धन भी हर ले तो भी राजा को कुछ दोष नहीं।

जो राजा नीति और बल को त्याग कर प्रजा को पीड़ा देकर धन इकट्ठा करता है, उसका राज्य शत्रु हर लेते हैं।

प्रजा के दुःख से राजा का नाश हो जाता है। इसलिए राजा इतना अन्न-संग्रह रक्खे जिससे उस का प्रजा तीन बरस तक निर्वाह कर सके।

धन भी कैसी अजीब चीज़ है। इसके इकट्ठा करने में महादुःख, इसकी रक्षा में उससे भी चौगुना दुःख है। और, यदि, क्षणमात्र भी धन की रक्षा में बेपरवाही की तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य अपने काम में आप ही सुस्ती करता है तो और (भृत्यादि) क्यों न करेंगे। जो आप अपने काम में जागता रहता है तो उसके सहायक भी जागते रहते हैं।

जो संचय करना जानता है और उसकी रक्षा करना नहीं जानता तो उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं। उसका संचय करना व्यर्थ है।

जो मनुष्य महालोभी हो, जो स्त्रियों के वश में हो गया हो और जो चोर, जार, हिंसक आदि को गवाह बनावे वह महामूर्ख है।

रत्नों के पहचानने वालों ने कहा है कि मोती और मूँगे को छोड़कर शेष रत्नों पर लोहे और पत्थर की लकीर नहीं होती।

जगत् राजा के आश्रय होता है। प्रजा राजा के समान आचरण करती है। राजा देश के पाप और पुण्य को भोगता है।

जिसकी कीर्त्ति जब तक पृथिवी पर रहती है वह तब तक स्वर्ग में रहता है। अकीर्त्ति ही नरक है।

मनुष्य के देह से जो अन्य देह मिलती है वही नरक है, क्योंकि वह आधि और व्याधि रूप महापाप का फल है।

राजा आप भी धर्म में रहे और प्रजा को भी धर्म में स्थिर रक्खे। क्योंकि धार्मिक राजा के पास प्रजा बड़ी प्रसन्नता से निवास करती है।

देश के धर्म, जाति के धर्म, सनातन से चले आये धर्म और प्राचीन या नवीन धर्म, इनको जान

कर राजा देश की रक्षा के लिए धारण करे। धर्म को रक्षा से राजा को लक्ष्मी और कीर्त्ति मिलती है।

जो मनुष्य जन्म से उत्तम है वह तो नीच के संसर्ग से नीच बन सकता है और जो जन्म से नीच है वह उत्तमों के संसर्ग से उत्तम नहीं बन सकता।

यज्ञ करना, पढ़ना और दान देना ये द्विजातियों के कर्म हैं। ब्राह्मणों के ये तीन काम उनसे अधिक हैं:- दान लेना, यज्ञ कराना, और पढ़ाना।

सज्जनों की रक्षा, दुष्टों का नाश और प्रजा से कर लेना ये तीन काम क्षत्रियों के अधिक हैं। और गायों की रक्षा, खेती और व्यहार, ये तीन काम वैश्यों के अधिक हैं।

जिसने सब विद्यायें पढ़ी हैं वही सब का गुरु है और जो पढ़ा हुआ न हो वह जाति से गुरु नहीं हो सकता।

विद्याओं और कलाओं की गिनती नहीं। ये असंख्य हैं। पर मुख्य विद्या ३२ और मुख्य कला ६४ हैं।

जो जो काम वाणी से हो सकते हैं वे विद्या कहलाती हैं और जिन कामों को गूँगा (मूक) भी कर सके वह कला कहलाती है।

जिसमें आकृति और हेतु से अवस्था का अच्छी तरह ज्ञान हो वह ऋगवेद का उपवेद "आयुर्वेद" कहाता है।

जिससे युद्ध, शस्त्र, अस्त्र की रचना करने का ज्ञान हो, वह यजुर्वेद का उपवेद "धनुर्वेद" है।

उदात्त आदि धर्मयुक्त स्वरों से—चाहे वे वीणा से निकले हों या कण्ठ से—ताल सहित गान का ज्ञान जिस शास्त्र से होता है वह सामवेद का उपवेद "गान्धर्व वेद" कहाता है।

जिसमें अनेक प्रकार की पूजा के प्रयोग हों, और उन मन्त्रों के प्रयोगों की समाप्ति उनके धर्म और नियमों सहित वर्णन की गई हो, वह अथर्ववेद का उपवेद 'तन्त्र' रूप है।

जिसमें स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदान से और सवन आदि से अक्षरों के पढ़ने की शिक्षा की गई हो उसे "शिक्षा" कहते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों से जो यज्ञों के प्रयोग कहे हैं वह श्रौत कल्प है और जो इसके विपरीत है उसे स्मार्त्त कल्प कहते हैं।

जिसमें प्रत्ययों का विधान किया गया हो और धातु, सन्धि और समास से शब्द और अपशब्द का

वर्णन हो और एक, दो, बहुत लिंग के भेद से शब्दों का वर्णन हो, वह "व्याकरण" कहाता है।

जिसमें वाक्यों के अर्थों से एक अर्थ का संग्रह किया हो और जिसमें शब्द शब्द की व्याख्या की गई हो, वह निरुक्त कहाता है।

जिसमें नक्षत्रों और ग्रहों की गति से समय की विधि हो और संहिता और होरा से गणित हो वह 'ज्योतिष' कहाता है।

जहाँ मगण, यगण, रगण, सगण. तगण, जगण, भगण. नगण, गुरु और लघु के प्रमाणों से पद्य (श्लोक) रचना का विधान हो, वह कल्प रूप "छन्दःशास्त्र" कहाता है। यह भी वेदों का ही अंश है।

जिसमें तरह तरह के अर्थों की कल्पना की गई हो वह "मीमांसा" कहाता है।

जिसमें भाव और अभाव रूप पदार्थों का प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से विवेक सहित वर्णन हो वह कणाद आदि का मत "तर्क" शास्त्र है।

जिसमें पुरुष (ईश्वर), आठ प्रकार की प्रकृति, और सोलह विकार और तत्त्व आदि की संख्या होती है वह "सांख्य" कहाता है।

ब्रह्म ही एक अद्वितीय है और माया कुछ भी नहीं है। सारा संसार अज्ञान से मायारूप ही भासता है। यह "वेदान्त" है।

जिसमें प्राणों के रोकने आदि से चित्त की वृत्ति का निरोध हो या ध्यान-समाधि से चित्तवृत्ति का अवरोध हो वह "योग-शास्त्र" कहाता है।

राजा के कर्म आदि के मिष से जिसमें प्राचीन वृत्तान्त का कथन हो वह "इतिहास" और "पुरा-वृत्त" कहाता है।

जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और वंशों के चरितों का वर्णन हो वह "पुराण" कहाता है।

जिसमें वेद के अनुकूल धर्मों का और अर्थशास्त्र का वर्णन हो, वह "स्मृति" कहलाता है।

जिसमें युक्ति ही को बलवान् प्रमाण माना गया हो और सब बातों का स्वाभाविक वर्णन हो और ईश्वर किसी चीज़ का भी कर्त्ता नहीं है और न वेद है, जिस में ऐसा वर्णन हो वह "नास्तिक मत" है।

श्रुति और स्मृति के अनुकूल जिसमें राजा के वृत्तान्त की शिक्षा हो और युक्ति से धन के इकट्ठा

करने का वर्णन किया गया हो, वह "अर्थशास्त्र" कहाता है।

जिसमें शश आदि भेदों से पुरुषों के, और पद्मिनी आदि भेदों से स्त्रियों के लक्षण और सत्व आदि दानों के लक्षणों का वर्णन हो वह "काम-शास्त्र" कहाता है।

जिसमें घर, मूर्त्ति, बगीचा, प्रासाद, बावड़ी बनाने की विधि का वर्णन हो वह "शिल्प-शास्त्र" कहाता है।

बराबर, कम, अधिक आदि से और सारूप्य आदि भेदों से जिसमें परस्पर गुण और शोभा आदि का वर्णन हो वह "अलंकार-शास्त्र" कहाता है।

जिसमें रसों सहित अलङ्कार और शब्दों का शुद्ध अर्थ हो और श्लोक आदि के भेद से विलक्षण चमत्कार दिखाया गया हो, वह "काव्य" कहाता है।

विद्या के लिए ब्रह्मचर्याश्रम, सब की पालना के लिए गृहस्थाश्रम, इन्द्रियों के रोकने के लिए, वश में करने के लिए, वानप्रस्थाश्रम और मोक्षसाधन के लिए संन्यासाश्रम है।

स्त्री-धर्म ।

पति को छोड़ कर स्त्री को किसी देवता की पूजा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि पति की सेवा के सिवा स्त्रियों को न धर्म, न अर्थ, न काम का कोई विधान है।

सबेरे स्त्री को पति से पहले उठना चाहिए और फिर अपने शरीर की शुद्धि करके चारपाई के कपड़ों को उठाना चाहिए और फिर घर की सफ़ाई करे।

फिर रसोई के सब पात्रों को अलग एकान्त में धो डाले और चूल्हे को लीप कर उसमें ईंधन रखदे।

इस प्रकार गृह-शुद्धि करने के पीछे सास-ससुर को प्रणाम करे।

मन से, वाणी से, काम से स्त्री सदा पति की आज्ञा में रहे। स्त्री को चाहिए कि वह छाया की तरह सदा पति के हित में तत्पर रहे।

दासी की तरह स्त्री पति की सदा सेवा करती रहे। पहले पति को भोजन कराकर फिर और

कुटुम्बवालों को दे। वह पति और कुटुम्ब को जिमा कर फिर आप भोजन करे और फिर घर के काम-धन्धों और आय-व्यय की चिन्ता में ही सारा दिन व्यतीत कर दे।

पति के सो जाने पर स्त्री भी सो जाय। स्त्री पति ही में जी लगाये रहे। वह मतवाली कभी न रहे। कामदेव को त्यागे और सदा अपनी इन्द्रियों को वश में रक्खे।

स्त्री को उचित है कि वह पति के सामने कभी ज़ोर से न बोले और न कड़ी बात कहे। वह कभी अप्रिय बात भी न बोले और किसी के साथ व्यर्थ लड़ाई झगड़ा न करे और व्यर्थ बकवाद भी न करे।

पति के कमाये हुए धन को स्त्री बहुत ख़र्च न कर डाले। उसे धन और धर्म की रक्षा करनी चाहिए। प्रमाद, उन्माद. रूठना, ईर्ष्या कभी न करे। और न कभी किसी की निन्दा करे।

जो स्त्री पति को देवता समझ कर उसकी सेवा पूजा करती है वह मर कर परलोक में सुख पाती है और इस लोक में भी उसे बड़ी बड़ाई मिलती है।

पति के समान स्त्रियों का कोई नाथ नहीं और न पति के समान कोई सुख ही है। इसलिए सब धन

सम्पत्ति को छोड़ कर स्त्री का सहारा तो केवल एक भर्ता ही है।

इस स्त्री को इसके पिता, भाई और पुत्र तो थोड़ा सा ही धन देते हैं पर पति इस को अमित देता है—सो ऐसे असंख्य धन के दाता भर्ता की कौन स्त्री पूजा न करेगी ?

हर जाति वालों को अपना वही धर्म करना चाहिए जो उनके बड़ों ने पहले से किया हो। यदि कोई जाति इसके विरुद्ध करे तो उसे राजा दण्ड दे।

जो राजा सुख में आकर प्रजा जनों के कामों को नहीं देखता वह निश्चय घोर नरक में पड़ता है।

जो राजा बिना जाने अधर्म कार्य करता है उस दुरात्मा पापी राजा को उसके शत्रुजन जल्द वश में कर लेते हैं।

या तो बुद्धिमान् मनुष्य सभा में जावे ही नहीं और या जो जावे तो यथार्थ कहे। क्योंकि न बोलने या असत्य बोलने में बड़ा पातक होता है।

एक ही शास्त्र का पढ़ने वाला सब मनुष्यों के सब कामों का निर्णय नहीं कर सकता। इसलिए विवादों के निर्णय कराने के लिए राजा ऐसे मनुष्यों को नियत करे जो अनेक शास्त्रों के जानने वाले हों।

यदि स्त्रियों को, ब्राह्मणों को, और गायों को विपत्ति हो तो क्षत्रिय राजा का पहला कर्तव्य है कि वह ऐसे समय में युद्ध करे, युद्ध से कभी न हटे।

जो राजा युद्ध से भागता है उसे देवता नष्ट कर डालते हैं।

राजा को चाहे कोई भी युद्ध के लिए बुलावे तो उसे अवश्य युद्ध के लिए जाना चाहिए। यही क्षत्रियों का मुख्य धर्म है।

यदि राजा हो कर युद्ध न करे और ब्राह्मण होकर परदेश में न जाय तो इन दोनों को पृथ्वी इस तरह ग्रस लेती है जैसे बिल में सोने वालों को साँप।

जो राजा आपत्काल में प्रजा की रक्षा करता है, जगत् में उसी का जीना सफल है। क्षत्रिय के लिए यह बड़ा भारी अधर्म है कि जो वह खाट पर पड़ा पड़ा मर जाय। यही बड़े शर्म की बात है कि जो क्षत्रिय कफ, पित्त को उगलता हुआ चारपाई पर पड़ा पड़ा मर जाय।

जो क्षत्रिय बिना शरीर में घाव हुए मर जाता है महात्मा लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते।

संग्रामों में परस्पर मारते हुए राजा जो पीछे को नहीं हटने से स्वर्ग में जाते हैं।

जो क्षत्रिय वीर योद्धा अपने स्वामी के लिए शत्रु की सेना पर पराक्रम करता है वह अनन्त काल तक स्वर्ग भोगता है।

उसके कुटुम्बियों को स्वर्ग में गये हुए का कभी सोच न करना चाहिए, क्योंकि वह सब पापों से छूट कर पवित्र होगया और अच्छे लोकों में चला गया।

चिर काल तक तप करने से मुनियों को जो पद, जो गति, मिलती है वह संग्राम में मरने से शूरवीर को बहुत जल्द प्राप्त हो जाती है।

वीर पुरुषों का यही (युद्ध में मरना या मारना ही) परम धर्म है; यही उनका परम तप है। यही उन का सनातन धर्म है। जो युद्ध से नहीं भागता चारों आश्रम उसी के हैं।

तीनों लोकों में शूर वीरता से परे और कोई बात उत्तम नहीं है। शूर वीर ही सब का पालन करता है और उसी के सहारे सब लोग जीते हैं।

योग से युक्त संन्यासी और संग्राम में मरा हुआ शूर वीर ये दोनों अपनी कीर्ति से सूर्य्यमण्डल को भी भेदन कर सकते हैं।

आततायी (शस्त्रधारी) से सदैव अपनी रक्षा करनी चाहिए। देखो, वेद की आज्ञा से विद्वान् ब्राह्मण भी द्रोणाचार्य्य ने युद्ध किया। चाहे आततायी ब्राह्मण ही क्यों न हो वह भी मारने योग्य है। आततायी के मारने से मारने वालों को कुछ दोष नहीं होता। आततायी चाहे बालक ही क्यों न हो उसको भी मारना चाहिए। उसके मारने में कुछ पाप नहीं। बल्कि उलटा उसके न मारने में पाप लगता है।

जो नीच मनुष्य जीने के लिए मरता है—युद्ध से भागता है, वह जीता हुआ भी मुर्दा है। वह सब देश भर के पापों को भोगता है।

जो मनुष्य अपने मित्रों या स्वामी को छोड़ कर रण में से भाग जाता है, जब तक वह जीता है तब तक उसकी निन्दा ही होती रहती है और मर कर नरक भोगता है।

जो मनुष्य शरणागत की रक्षा नहीं करता वह अनन्त काल तक नरक में दुःख भोगा करता है।

दुराचारी क्षत्रिय को ब्राह्मण मार दे तो भी कुछ पाप नहीं होता।

जब क्षत्रियों का कुल प्रजा की रक्षा में असमर्थ हो जाय और नीच लोग जगत् को पीड़ा देने लगें तब, ऐसे समय में, ब्राह्मण उन नीचों को नष्ट कर डाले।

जो राजा अपने नियमों के अनुसार स्वयं वर्ताव करता है वही जगत् में प्रतिष्ठा पाता है, और नहीं।

जिस राजा के काम का नियम नहीं—चाहे उस की कैसी मीठी बातें क्यों न हों—वह सदा कुटिल समझा जाता है। वह जल्द राज से पतित हो जाता है।

उत्तम राजा भी यदि सब प्रजा का धर्मनाश करे तो वह नीच हो जाता है। क्योंकि धर्म अधर्म की प्रवृत्ति में राजा ही कारण है।

अर्थ (धन) के सब दास हैं—अर्थ किसी का दास नहीं। इसलिए मनुष्य यत्न करके अर्थ का संग्रह करे। अर्थ ही से धर्म, काम, और मोक्ष की सिद्धि होती है।

विपत्ति के समय मित्र ही काम आता है। तुच्छ मनुष्य का भी अपमान महावैर का कारण हो जाता है।

जिसका एक वार भी भोजन खाया हो, उसके लिए प्राण तक दे देने चाहिएँ। भृत्य का परम धर्म यही है कि वह स्वामी को विपत्ति में भी न छोड़े। उसके साथ ही रहे।

स्वामी भी वही उत्तम है जो भृत्य के लिए प्राण दे। श्रीरामचन्द्र जी के वरावर नीतिज्ञ राजा आज तक कोई नहीं हुआ। यह उन्हीं की नीति थी कि जिस पर मोहित होकर वन्दर भी उनके भृत्य हो गये।

कूटनीति के जानने वालों में श्रीकृष्णचन्द्र अद्वितीय हुए। उन्होंने अपनी बहन सुभद्रा अर्जुन को व्याह दी।

ऐसे काम का प्रारम्भ करना चाहिए जो सुखसे समाप्त हो जाय। एकदम ही बहुत काम नहीं आरम्भ करने चाहिएँ। ऐसा करने में सुख नहीं मिलता।

पहले काम के पूरा हो जाने पर दूसरा काम शुरू करना चाहिए। क्योंकि जब एक काम ही उससे न हो सका तो दूसरा कैसे हो जायगा।

कणिक-नीति ।

राजा धृतराष्ट्र का एक मन्त्री था । उस का नाम था "कणिक" । वह राज-नीति में बड़ा चतुर था ।

एक दिन पाण्डवों की विद्या, बुद्धि और बल को देख कर राजा धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई । उसने सोचा कि जो पाण्डव बढ़ गये तो ये राज्य को छीन लेंगे । फिर मेरा पुत्र दुर्योधन क्या करेगा । यही सोच कर उसने एक दिन अपने कणिक मन्त्री को बुलाया । उससे पूछा कि इस विषय में अब हम को क्या करना चाहिए ? उस समय कणिक ने बहुत उत्तम राजनीति का वर्णन किया । उस आख्यान को 'कणिकनीति' कहते हैं । वह महाभारत के आदिपर्व में लिखी हुई है । उस का सरल अनुवाद सुनिए ।

राजा के पूछने पर कणिक ने कहा—राजा को चाहिए कि वह सदा दण्ड देने को तैयार रहे । उसे

अपना पराक्रम प्रकट करके दिखाते रहना चाहिए। अपना भेद किसी को न दे। दूसरे का भेद आप ले ले। सदा ऐसा बर्त्ताव करे कि जो सब लोग उस से डरते रहें। अपना छिद्र शत्रु न देख पावें। शत्रु के छिद्रों को आप देख ले। जिस दण्ड के करने से सब काम सिद्ध होते हों ऐसे दण्ड को कभी न छोड़े। उसे अपना भेद ऐसे छिपाना चाहिए जैसे कछुआ अपनी गर्दन को छिपा लेता है।

राजा को चाहिए कि वह कभी कोई काम अधूरा न छोड़ दे। जो काम करे उसे पूरा ही करके छोड़े। शत्रु को कभी शेष न छोड़े। क्योंकि पाँव में लगा हुआ काँटा समय पर अवश्य दुःख देता है। शत्रु को ज़रूर मार डालना चाहिए। जो शत्रु बलवान् हो और भाग गया हो तो मौक़ा पाकर उसे भी मार डाले। उसे जीता न छोड़े। निर्बल शत्रु को भी बिना मारे न छोड़े। क्योंकि आग की छोटी सी चिनगारी सारे वन को भस्म कर सकती है।

जो शत्रु अपने से बहुत ही बलवान् हो तो गूँगे बहिरे की तरह मौक़ा देखता रहे। मौक़ा पाने पर मारने में कभी न चूके। हिरन के मारने वाले भी पहले आप मुर्दे की तरह ज़मीन पर लेट जाते हैं।

ज़ब हिरन उसके पास आ जाते हैं तो वह धोखा देकर हिरन को मार डालता है। इसी तरह राजा भी अपने शत्रु को धोखा देकर मारे। शत्रु को हर तरह से मारना चाहिए। साम, दाम, दण्ड और भेद इन सब उपायों से शत्रु को अपने वश में रखना चाहिए। चाहे शत्रु दीन ही होकर क्यों न आया हो पर उसे भी नहीं छोड़ना चाहिए। शत्रु के मारे जाने पर सब भय दूर हो जाते हैं। शत्रु के रहने से कभी न कभी दुःख मिल ही जाता है। इसलिए शत्रु को जड़ से काट डालना चाहिए। समय मिलने पर शत्रु के पक्षवालों को भी ज़रूर मारना चाहिए।

जिस राजा के छिद्र उसके शत्रु जानते हैं उसे कभी रक्षित न समझना चाहिए। शत्रु से सदा डरना ही चाहिए। अग्निहोत्र करके या साधुवेष बना कर या और किसी तरह से शत्रु को ज़रूर मार डालना चाहिए।

शत्रु की बड़ाई करके उसे सिर पर चढ़ा ले। और मौक़ा पाने पर उसे ऐसे मार डाले जैसे पत्थर पर पटक देने से सिर पर रक्खा हुआ मिट्टी का घड़ा फूट जाता है। शत्रु कितना ही दीन बने, पर उस पर तो कभी दया करे ही नहीं। हानिकारी को

तो मार ही डालना चाहिए। हर तरह से शत्रु को बहका कर अपना काम साध लेना चाहिए। साम, दाम, दण्ड और भेद करके शत्रुओं को वश में कर लेना चाहिए।

यह सुन धृतराष्ट्र ने पूछा कि इन उपायों से शत्रु को कैसे वश में कर लेना चाहिए, इसे अच्छी तरह समझाइए। इसके उत्तर में कणिक ने एक दृष्टान्त कहा। सुनिए।

एक गीदड़ था। वह वन में रहा करता था। वह बड़ा स्वार्थ-चतुर था। उसने एक सिंह से, एक चूहे से, एक भेड़िये से और एक नेवले से दोस्ती कर ली। वह इन चारों मित्रों के साथ वन में रहने लगा। एक दिन वन में, उसके स्थान के पास ही, एक चरता चरता हिरन आ पहुँचा। उसे देख कर उसके खाने के लिए गीदड़ का मन ललचाया। पर वह कर ही क्या सकता था। उसको सामर्थ्य ही कहां जो हिरन को मार सके।

विचार कर गीदड़ ने सिंह से कहा कि आप ने इस के मारने के लिए कई बार उद्योग किया, पर यही आप से न मर सका। जो हमारा यह मित्र चूहा सहज में जाकर इसके पाँव को काट दे तो वह

लँगड़ा हो जायगा। फिर आप उसे आसानी से मार सकेंगे। फिर हम सब मित्र आनन्द से इसे खा जायँगे।

यह सुन कर चूहे ने वैसा ही किया। उसने उस सोते हुए हिरन के पैर में काट खाया। हिरन लँगड़ा हो गया। तब सिंह ने उसको झट पकड़ कर मार डाला। यह देख कर गीदड़ झट उस हिरन के पास जा बैठा। उसने सबसे कहा कि मैं इसको रखा रहा हूँ। तुम सब लोग जाकर स्नान कर आओ। फिर आकर सब मिल कर खायँगे।

यह सुन वे सब नदी में स्नान करने चले गये। वह गीदड़ वहीं बैठा रहा। पर उसने अपनी सूरत ऐसी बना ली, जैसे किसी बड़े चिन्तामग्न की होती है। वह ऐसा होकर बैठ गया मानो चिन्ता में डूब रहा है।

अब वे स्नान करके लौटे। सब से पहले सिंह आया। सिंह ने आकर देखा तो गीदड़ से कहा कि मित्र, तुम तो बड़े पण्डित हो, बड़े चतुर हो, फिर तुम काहे की चिन्ता कर रहे हो? देखो, आज हम इस हिरन का मांस खाकर इस वन में विचरेंगे।

यह सुन गीदड़ ने कहा कि इस समय मुझसे चूहे ने एक ऐसी बात कही है कि जिससे मुझे बड़ी ग्लानि हो रही है। तबसे मेरा चित्त इस हिरन के खाने को भी नहीं चाहता। उसने कहा कि सिंह के बल को धिक्कार है जो आज मेरी भुजाओं के बल से मारे हुए हिरन को खाकर अपना पेट भरेगा।

यह सुन सिंह ने कहा कि यदि उसने यही कहा है तो मैं अपने ही पुरुषार्थ से मार कर खाऊँगा।

यह कह कर वह सिंह तो वन में जीवों के मारने के लिए चला गया। इतने ही में चूहा भी न्हा कर आगया। उसे देख कर गीदड़ ने कहा कि भाई चूहे, नेवला कह गया है कि हमें तो विष का सा मिला हुआ हिरन का माँस अच्छा नहीं लगता। हम तो आज चूहे का माँस खायँगे।

इतना सुनते ही चूहे के होश उड़ गये। वह डर कर झट बिल में जा घुसा।

फिर भेड़िया आया। उसे देख कर गीदड़ ने कहा—भाई न जाने आज सिंह क्यों तुम पर क्रोध कर रहा है। न जाने किस बात से वह आज तुमसे बिगड़ रहा है। मुझे आज तुम्हारा कल्याण नहीं

दीखता। अब वह अपनी स्त्री सहित यहाँ आया ही चाहता है। जो कुछ तुम्हारे विचार में आवे सो करो। तुम मेरे मित्र हो। इसलिए यह बात मैंने तुम से कह सुनाई है।

यह सुन कर भेड़िया भी मारे डर के वन में कहीं को भाग निकला।

उसके चले जाने पर नेवला भी आ गया। उसको आता देख गीदड़ अकड़ कर खड़ा होकर कहने लगा कि आ, तू पहले मुझसे लड़ाई करले। जो तू मुझसे बलवान् हो तो पेट भर कर मांस खाना, नहीं तो बिना जीते तुझे मांस नहीं मिलेगा।

यह सुन कर नेवले ने उसकी मन की जान ली। उसने कहा कि नहीं मित्र, तुम बड़े वीर हो। तुम बड़े चतुर हो। मालूम होता है तुमने अपनी वीरता से, अपनी चतुराई से, सिंह, चूहे और भेड़िये को हरा कर भगा दिया है। मेरी सामर्थ्य तुमसे लड़ने की नहीं है।

यह कह कर वह नेवला भी चलता बना। तब गीदड़ ने निश्चिन्त बैठ कर उस हिरन के मांस को खा लिया।

हे राजन्, जो राजा इस गीदड़ की तरह आचरण करता है वह भी शान्तिपूर्वक स्वतन्त्रता से सुख भोगता है।

राजा को चाहिए कि डरपोक को डर दिखा कर, शूर को नम्रता से, लोभी को कुछ देकर और बराबर वाले को या निर्बल को पराक्रम से, वश में कर ले।

राजा को चाहिए कि चाहे पुत्र हो, या मित्र हो, चाहे भाई हो, या बाप हो, या गुरु हो जो कोई शत्रु से जा मिले उसे ज़रूर मार डालना चाहिए।

छल देकर, या विष देकर या सौगन्द देकर या और जैसे बने वैसे शत्रु को कभी जीता न छोड़े। तब तक शत्रु की निन्दा न करे जब तक उसे मार न डाले। जीते हुए की कभी निन्दा न करे। मर जाने पर कृपा करे, शोक प्रकट करे और रोवे। शत्रु को शान्त वचनों से विश्वास दिलावे। जब मौक़ा देखे तभी उस पर प्रहार करे।

राजा को चाहिए कि शत्रु को मार कर उसके घर को जला दे। अधम, नास्तिक और चोरों को राजा अपने राज्य में न रहने दे। जब शत्रु आवे तो

उसे लेने जाय, अच्छे आसन पर बिठावे और जो धन देने की ज़रूरत हो तो उसे धन भी दे दे। पर जब शत्रु को अपना पूरा विश्वास हो जाय तब मौक़ा मिलने पर उसे ज़रूर मार डाले।

राजा को किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए। चाहे कोई विश्वासी हो या विश्वासघाती हो। दूत चाहे अपना हो या पराया, ख़ूब परीक्षा करके रखना चाहिए। राजा को अपने दूत जगह जगह समाचार लाने के लिए नियत कर देने चाहिएँ।

राजा सबसे हँस कर और नम्रता से बोले पर भीतर कठोरता रक्खे और समय पर भयंकर काम भी कर डाले।

जो राजा अधिक सम्पत्ति चाहे, अधिक ऐश्वर्य चाहे, वह इन चार कामों को ज़रूर करता रहे। १ हाथ जोड़ना, २ सौगंद खाना, ३ शान्त रहना और ४ चरण छूना।

राजा को सदा दीनों का पालन पोषण करना चाहिए। समर्थ होने पर धर्म का आचरण करना चाहिए।

यह नियत है कि मनुष्य को तब तक अपना कल्याणकारी मार्ग नहीं दिखाई देता जब तक वह संकट में न पड़ले। जो मनुष्य संकट से पार होकर उठ बैठता है तो उसे अपने सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है।

जो मनुष्य शत्रु से मिल कर निःशङ्क होकर रहता है। वह मूर्ख है।

अपनी सलाह किसी को नहीं सुनानी चाहिए। बिना शत्रु के मर्मों को काटे, बिना कठिन काम किये मनुष्य को लक्ष्मी नहीं मिल सकती। लक्ष्मी ऐसी आसान नहीं है कि जो बिना पुरुषार्थ के मिल जाय। यह खुशामद से नहीं मिला करती।

शत्रु की सेना को, चाहे वह भूखी, प्यासी, थकी, मांदी हो क्यों न हो, बिना मारे कभी न छोड़े। किसी के काम को पूरा पूरा नहीं कर देना चाहिए। कुछ शेष भी रखना चाहिए। क्योंकि दीन दीन के पास कभी नहीं जाना। काम निकल जाने पर कोई किसी के पास नहीं आना। मतलब निकल जाने पर कोई किसी से बात नहीं करता।

आने वाले भय के दूर करने के लिए पहले से हो उपाय करे। पहले करने योग्य काम को पहले करे। बिना विचारे कोई काम न करे।

जो मनुष्य शत्रु को छोटा जान कर छोड़ देता है उसके दुःख की जड़ें ताल वृक्ष की तरह पाताल में चली जाती हैं। शत्रु को कभी देना न चाहिए। उसे आशा ही देता रहे। शत्रु के साथ बहुत दिनों का वादा करे। वादे का समय आने पर कुछ बहाना बना देना चाहिए। अपना समय देखता रहे। समय आने पर शत्रु को मार डाले।

इसलिए हे राजन्, पाण्डव बड़े बलवान् हैं। उनको नीति से अपने वश में करना चाहिए। आप ऐसा काम कीजिए जिससे आप बचे रहें और पीछे किसी बात का पछतावा न हो।

फुटकर नीति ।

दूसरे की स्त्री को सदा माँ-बहिन के बराबर देखना चाहिए । देखो रावण ने महाराज रामचन्द्र जी की पतिव्रता स्त्री सीता को चुरा लिया था, इसी कारण वह कुटुम्बसहित मारा गया । अधर्मी का नाश ही होता है ।

जुआ कभी नहीं खेलना चाहिए । देखो इसी जुए के व्यसन से धर्मराज युधिष्ठिर ने और राजा नल ने कितनी विपत्ति सही ।

चाहे कितनी ही विपत्ति क्यों न आजाय, पर धर्म कभी न छोड़ना चाहिए । देखो हरिश्चन्द्र ने पहले कितना कष्ट उठाया, कितनी मुसीबतें सहीं, पर अपने धर्म को नहीं छोड़ा ।

सदा अच्छे जनों का संग करना चाहिए । बुरे जनों का नहीं । देखो विभीषण ने रामचन्द्र जी के साथ संग किया था सो उसे राज मिल गया ।

माँ-बाप का कहना मानना पुत्र का सबसे बढ़ कर धर्म माना गया है। देखो, महात्मा रामचन्द्र पिता की आज्ञापालन करने के लिए चौदह वर्ष तक वन में रहे।

नीच पुरुषों के पास कभी न रहना चाहिए। देखो महात्मा द्रोण, भीष्म कैसे प्रतापी शूरवीर थे, पर नीच दुर्योधन के संग से वे भी मारे गये।

दूसरे जीव की रक्षा के लिए मनुष्य को पूरा यत्न करना चाहिए। देखो राजा शिवि ने, पहले, कबूतर की रक्षा के लिए अपने शरीर का माँस बाज़ को दे दिया था।

अपनी प्रतिज्ञा को कभी झूठी नहीं करना चाहिए। देखो महाराज दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञा की कितनी रक्षा की थी। उन्होंने अपना प्राण से भी प्यारा पुत्र रामचन्द्र वन को निकाल दिया; पर अपनी प्रतिज्ञा झूँठी नहीं की।

चाहे कोई कहे, पर हित की बात सबकी माननी चाहिए। देखो विदुर का उपदेश न मान कर कौरवों का कैसा सत्यानाश हो गया।

विपत्काल में सहायता के लिए कोई न कोई कला अवश्य सीखनी चाहिए। देखो अर्जुन नाचना गाना जानता था, इसलिए राजा विराट के यहाँ एक वर्ष तक इसी कला के प्रताप से वह छिपा हुआ रहा।

बलवानों के सब सहायक हो जाते हैं; निबलों का कोई नहीं। देखो पवन आग को तो प्रचण्ड कर देता है पर दीपक को बुझा कर ही छोड़ता है।

हानि पहुँचाने वाले शत्रु को निर्बल न समझे, उसे छोटा न जाने। देखो ज़रा सी आँच का कणका बहुत बड़े तृणों के ढेर को भस्म कर डालता है।

जब तक पराक्रमी पुरुष पराक्रम का काम नहीं करता तब तक उससे कोई नहीं डरता। देखो सिंह की तसवीर बच्चों का खिलौना हो जाती है।

शत्रु का प्रसन्न होना और रुष्ट होना बराबर है। वह सब तरह हानि ही पहुँचाता है। देखो पानी चाहे ठंढा हो या गरम, पर आग को बुझा ही डालता है।

कहीं कहीं मीठी वाणी भी दुःख देने वाली हो जाती है। देखो यदि तोता या मैना की वाणी

मीठी न होती तो ये बेचारे पींजरे में क्यों बंद किये जाते।

बे-मतलब कोई किसी के कड़ुवे वचन नहीं सहा करता। देखो दूध देनेवाली गाय जो लात मारती है तो भी लोग उसे पुचकारा करते हैं।